केरल ज्योति

सितंबर 2025

ISSN 2320-9976
Reference Resource Journal

ISO 9001: 2015

केरल हिंदी प्रचार सभा

सुगम हिन्दी परीक्षा CBSE/ICSE रजत जयंती वर्षागांठ एवं
प्रमाण पत्र वितरण का उद्घाटन केरल के शिक्षा मंत्री श्री.वी.शिवनकुट्टी कर रहे हैं।

श्रीनारायणगुरु मुक्त विश्वविद्यालय का LSC केरल हिन्दी प्रचार सभा में श्री.के.जयकुमार IAS उद्घाटन कर रहे हैं।

सुगम हिन्दी परीक्षा पुरस्कार वितरण सम्मेलन एरणाकुलम में
जस्टिस देवन रामचन्द्रन उद्घाटन कर रहे हैं।

पुष्प : 62 दल : 6 अंक: **सितंबर 2025**

अनुक्रमणिका

संपादकीय 5

मध्यप्रदेश सरकार का हिंदी सेवा पुरस्कार प्राप्त
डॉ के सी अजयकुमार: एक लघु परिचय–**अधिवक्ता (डॉ) मधु बी** 6

राजा रविवर्माचरित महाकाव्य – **प्रो.डी.तंकप्पन नायर** 8

दर्शन माला (अनूदित व्याख्या) – **डॉ नेलसन डी** 10

युगद्रष्टा विद्याधिराजा चट्टंपिस्वामी का व्यक्ति-कृति जीवन :
एक संक्षिप्त अवलोकन
मूल : **डॉ ए एम उण्णिकृष्णन,** अनुवाद : **डॉ प्रियारानी पी एस** 11

स्त्री संवेदना का हरित पक्ष – **डॉ शांती नायर** 13

गोविंद मिश्र के उपन्यास 'हवा में चिराग' में प्रकृति और विश्व विभीषिका
श्वाती पाण्डेय 19

ट्रांसजेंडर जीवन की त्रासदी : फिल्म 'शबनम मौसी' के संदर्भ में
नेहा जॉनी 24

प्रख्यात साहित्यकार गोविंद मिश्र के लेखन के प्रेरणा स्रोत
डॉ जयशंकर रामजीत पाण्डेय 27

'उत्कोच' उपन्यास में दलितों के मानवाधिकार का हनन : राजनीतिक स्तर
अश्वती टी वी 31

'आकाश और धरती के कुंजी पर' उपन्यास में
आधुनिक महिला एवं पुनर्जागरण
डॉ षमीना ए एस 36

भारतीय संस्कृति के अभिन्न अंग स्त्री द्‌वारा पर्यावरण शिक्षण :
एक समीक्षात्मक अध्ययन – **डॉ हसमुखलाल एल राठवा** 40

प्रश्नोत्तरी – **डॉ.रंजीत रविशैलम** 42

पेड़ तुम पेड़ नहीं नज़्म अपनी नज़र में–**प्रो (डॉ) मनु** 43

देवयानम् (आत्मकथा)
मूल : डॉ.वी.एस. शर्मा, अनुवाद : प्रो. के.एन.ओमना 47

प्रो.के.के.कृष्णन नंपूतिरि-विनम्र श्रद्‌धांजलि – **डॉ श्रीलता विष्णु** 49

मुखचित्र : सुगम हिंदी परीक्षा (CBSE/ICSE) के रजनजयंती समारोह का उद्‌घाटन कर रहे हैं केरल सरकार के माननीय शिक्षा मंत्री श्री वी शिवनकुट्टी।

केरलज्योति

केरल हिंदी प्रचार सभा की मुख पत्रिका

(केंद्रीय हिंदी निदेशालय की वित्तीय सहायता से प्रकाशित)

केरल हिंदी प्रचार सभा के संस्थापक
स्व. के वासुदेवन पिल्लै

पूर्व समीक्षा समिति
प्रो (डॉ) एन रवींद्रनाथ
डॉ के एम मालती
प्रो(डॉ) आर जयचन्द्रन
प्रो (डॉ) जयश्री एस आर

परामर्श मंडल
डॉ तंकमणि अम्मा एस
डॉ लता पी
डॉ रामचन्द्रन नायर जे

प्रबन्ध संपादक
गोपकुमार एस (अध्यक्ष)

मुख्य संपादक
प्रो डी तंकप्पन नायर

संपादक
डॉ. एम एस विनयचंद्रन
डॉ. रंजीत रविशैलम

संपादकीय मंडल
अधिवक्ता मधु बी (मंत्री)
सदानन्दन जी
मुरलीधरन पी पी
प्रो रमणी वी एन
चन्द्रिका कुमारी एस
एल्सी सामुवल
आनन्द कुमार आर एल
प्रभन जे एस
डॉ नेलसन डी

सूचना : लेखकों द्वारा प्रकट किये गये मत उनके अपने हैं। उनसे संपादक का सहमत होना आवश्यक नहीं।

लेखकों से निवेदनः

• हिन्दी और इतर भारतीय भाषाएँ, साहित्य, संस्कृति आदि पर लिखी गयी उच्च स्तरीय मौलिक एवं अप्रकाशित रचनाएँ आमंत्रित हैं। • भाषा, साहित्य, संस्कृति आदि पर आयोजित समारोहों, चर्चाओं, संगोष्ठियों के समाचारों का भी स्वागत है। इन समाचारों को प्रस्तुत करनेवाले का नाम और पूरा पता भी लिख भेजें। • भारतीय भाषाओं से अनूदित कविता, कहानी भी भेजें। उनके साथ मूल लेखक से प्राप्त अधिकार पत्र भी प्रेषित करें। • प्राकाशनार्थ रचनाएँ साफ-साफ अक्षरों में लिखकर अथवा टंकित कर या **डी.टी.पी.** करके **सी.डी.** में भेजें। कृपया कार्बन प्रति न भेजें। • स्वीकृत रचनाएँ यथासमय पत्रिका में प्रकाशित की जाएँगी। • आप ई-मेल द्वारा भी अपनी रचनाएँ भेज सकते हैं। ई-मेल में Microsoft Word or Pagemaker फाइल में भेजिए। ई-मेल आईडी :khpsabha12@gmail.com • अपनी रचना के साथ पूरा पता (जिला, राज्य और पिनकोड सहित), लघु परिचय और फोटो भी भेजें।

संपादक, 'केरल ज्योति', केरल हिन्दी प्रचार सभा,
तिरुवनन्तपुरम-695 014

सभा का मुख्यालय और उसकी गतिविधियाँ

केरल की राजधानी तिरुवनंतपुरम के वषुतक्काड़ में सभा का मुख्यालय स्थित है। सभा के मुख्य परिसर में सभा के संस्थापक मंत्री की पावन स्मृति में श्री वासुदेवन पिल्लै स्मारक हिंदी ग्रंथालय, स्नातकोत्तर अध्ययन अनुसंधान केंद्र, साहित्याचार्य महाविद्यालय, केंद्रीय हिंदी महाविद्यालय, टंकण और आशुलिपि संस्थान, परीक्षा भवन, राष्ट्रवाणी मुद्रणालय, राष्ट्रज्योति पब्लिशेर्स के प्रकाशन अधिकारी का कार्यालय, हिंदी अध्यापक प्रशिक्षण महाविद्यालय (बी.एड़) और केरल विश्वविद्यालय की मान्यता प्राप्त शोध केंद्र हैं।

विज्ञापन दर (साधारण अंक)

	मासिक	वार्षिक
आवरण पृष्ठ 4 (रंगीन)	रु.2500.00	25,000.00
आवरण पृष्ठ 2 एवं 3 (रंगीन)	रु.2000.00	20,000.00
साधारण पृष्ठ पूरा	रु.1000.00	10,000.00
साधारण पृष्ठ 1/2	रु.600.00	6,000.00
साधारण पृष्ठ 1/4	रु.350.00	3,500.00

एक प्रति का मूल्य रु. 40/-   आजीवन चंदा : रु. 4000/-   वार्षिक चंदा : रु. 400/-

A /c No. 57022786007   IFS Code : SBIN0070033
State Bank of India, Vazhuthacaud Branch

अधिक जानकारी के लिए संपर्क करें : मंत्री, केरल हिन्दी प्रचार सभा, वषुतक्काडु, तिरुवनन्तपुरम-695 014.
दूरभाष:0471-2321378, 2329200, 2329459. फैक्स:0471-2329200 ई-मेल : khpsabha12@gmail.com

दूरभाष : 0471-2321378, 2329200, 2329459
फैक्स : 0471-2329459
मोबाईल : संपादक : 7898515222/ 9447657301

E-mail : khpsabha12@gmail.com
Website : www.keralahindipracharsabha.in

केरलज्योति
सांस्कृतिक जागरण की मासिक पत्रिका
सितंबर 2025

संपादकीय

राष्ट्रीय हिंदी दिवस की प्रासंगिकता

भाषा एक सापेक्ष प्रक्रिया है, एक सामाजिक व्यवस्था व व्यवहार है, क्योंकि समाज में भावों-विचारों का आदान-प्रदान भाषा के माध्यम से ही होता है। लेकिन हिंदी का स्थान उससे भी बहुत ऊपर है। हमारे देश को एक सरित् सूत्र में बाँधने का काम हिंदी भाषा ने ही किया है। कवींद्र रवींद्र नाथ ठागोर ने भी भारतीय भाषाओं को नदियाँ कहकर संबोधित किया था - "भारतीय भाषाएँ नदियाँ हैं और हिंदी महानदी।" राष्ट्रपिता महात्मागाँधी ने हिंदी को अर्थात् हिंदुस्तानी को राष्ट्रभाषा के रूप में चहुँओर ख्यात किया। उन्होंने 1905 में भाषा और जनता के साथ उसके स्वभाव की बात कही थी। 1905 में बंगाल का विभाजन हुआ। इस तरह भाषाई आधार पर जातीय एकीकरण की समस्या मुख्य राजनैतिक समस्या के रूप में सारे भारतवर्ष के सामने आई। गाँधीजी ने लोगों को अपनी भाषा और जातीयता पर अभिमान करना सिखाते थे। अतः हिंदी को राष्ट्रभाषा बनाने के पक्षघर थे। सन् 1918 में गाँधीजी आह्वान किया "एक तो जहाँ हिंदी मातृभाषा है, वहाँ उसका विकास करें। दूसरे जहाँ हिंदी नहीं बोली जाती, वहाँ उसका प्रचार करें। तीसरे देवनागरी लिपि का प्रचार किया जाए। " तब से लेकर हर जगह हिंदी का प्रचार-प्रसार होने लगा।

आज हिंदी मात्र साहित्यिक भाषा ही नहीं है, भारत संघ की राजभाषा भी है। इसलिए प्रशासन, व्यापार, संचार-माध्यम, पत्रकारिता, न्याय व्यवस्था आदि सभी क्षेत्रों में इसका प्रयोग हो रहा है। अनेक हिंदी प्रचार सभाओं, संस्थाओं, विश्वविद्यालयों, महाविद्यालयों, विद्यालयों की मदद से हिंदी के प्रचार-प्रसार में कोई कमी नहीं है। हिंदी निःसंदेह बढ़ रही है, किंतु उसकी दशा को देखकर चिंता होती है। कारण देश में अंग्रेज़ी का बढ़ता हुआ वर्चस्व है। वह रोज़गार से निरंतर जुड़ी है। लेकिन केरल राज्य में आज भी हिंदी रोज़गार की भाषा है। केरल हिंदी प्रचार सभा के नेतृत्व में चलाई जानेवाली परीक्षाओं, पाठ्यक्रमों में बच्चे शुरू से जुड़ते हैं और इसलिए ही बच्चों के मन में हिंदी के प्रति लगाव आरंभ से ही उत्पन्न होता है। साथ में त्रिभाषा सूत्र यहाँ लागू है। इसलिए राष्ट्रभाषा स्वरूप हिंदी, मातृभाषा मलयालम और विश्व भाषा अंग्रेज़ी यहाँ पढ़ाई जाती हैं।

केरल हिंदी प्रचार सभा हर वर्ष सितंबर 14 से लेकर हिंदी पखवाड़ा का आचरण करती है। विभिन्न महाविद्यालयों, विश्वविद्यालयों से जुड़कर साघोष राष्ट्रीय हिंदी दिवस मनाने की प्रथा है। सन् 2025 सितंबर 14 से अब हिंदी दिवस का उत्सव चल रहा है।

आप सभी सुधी पाठकों, हिंदी प्रेमियों, हितैषियों से आग्रह है कि आप हिंदी भाषा के प्रति अपने आकर्षण को और अधिक बढ़ाएँ और भारत की एकता को बरकरार रखने का प्रयास करें क्योंकि भारतवर्ष को 'एकता' बनाए रखने की ताकत सिर्फ और सिर्फ 'हिंदी' में है और किसी भाषा में नहीं है। आज विश्वभाषा के रूप में 220 करोड़ जनता हिंदी लिख व पढ़ सकती है। अतः विश्व के समस्त भूभागों में हिंदी की पहुँच होनी चाहिए और वह अंतरराष्ट्रीय स्तर पर 'वसुधैव कुटुंबकम्' की भावना को भी मूर्त रूप प्रदान करें।

सभी पाठकों - हिंदी प्रेमियों को केरल ज्योति परिवार की ओर से राष्ट्रीय हिंदी दिवस के उपलक्ष्य पर शुभकामनाएँ।

डॉ रंजीत रविशैलम, संपादक

मध्यप्रदेश सरकार का हिंदी सेवा पुरस्कार प्राप्त डॉ के सी अजयकुमारः एक लघु परिचय

अधिवक्ता (डॉ) बी मधु

डॉ. के.सी.अजयकुमार (जन्मः 28 मई 1964, तिरुवनन्तपुरम) हिंदी और मलयाळम् साहित्य-जगत में एक ऐसा नाम है, जिसने दोनों भाषाओं के बीच गहन सेतु-संरचना की है। गणित से स्नातक और हिंदी में एम.ए., एम.फिल., पीएच.डी. उपाधि प्राप्त करने के बाद उन्होंने नेशनल इंश्योरेंस कंपनी में अनुवादक के रुप में कार्य किया, तत्पश्चात लगभग दो दशक इंडियन ओवरसीज़ बैंक में वरिष्ठ प्रबंधक (राजभाषा) तथा अंत में कॉरपोरेशन बैंक में मुख्य प्रबंधक (राजभाषा) के पद पर रहे। उनकी साहित्यिक यात्रा बहुआयामी है। उन्होंने मौलिक रचनाएँ भी कीं, अनुवाद भी, और दोनों भाषाओं के बीच एक सांस्कृतिक संवाद कायम किया। हिंदी और मलयाळम् में प्रकाशित उनकी कुल पुस्तकों की संख्या 40 है। अंग्रेज़ी में 4 हैं।

मौलिक हिंदी रचनाएँ : हिंदी में उनकी प्रमुख मौलिक रचनाओं में सूर्यगायत्री, कालिदास, टैगोर- एक जीवनी, आदिशंकरम् और क्रांति का राजकुमार - वीर सावरकर उल्लेखनीय हैं। इन उपन्यासों में उन्होंने भारतीय इतिहास और संस्कृति के महान व्यक्त्त्वों को औपन्यासिक रु प में प्रस्तुत किया है। उनके लेखन में दार्शनिक गहराई, ऐतिहासिक तथ्य और साहित्यिक सौंदर्य का अनूठा संगम है।

मलयाळम् में मौलिक रचनाएँ : मलयाळम् में उनकी मौलिक कृतियों में मृत्युञ्जयम्, कालिदासन, रवीन्द्रनाथम् और आदिशंकरम् विशेष उल्लेखनीय हैं। इन उपन्यासों ने मलयाळम् पाठकों के बीच ऐतिहासिक-दार्शनिक साहित्य की नई धारा प्रवाहित की।

हिंदी में अनुवाद : डॉ. अजयकुमार ने मलयाळम् से हिंदी में भी अनुवाद किया है। इनमें आर. हरि की कृति वाल्मीकि रामायणम् ओरु पठनम् का अनुवाद वाल्मीकि-रामायण एक परिचय, तथा सी. राधाकृष्णन की गीताशास्त्रम् विशेष महत्त्वपूर्ण हैं। इसी प्रकार रंगा हरी की कृति महाभारत में कर्ण का हिंदी अनुवाद भी उनके खाते में है।

हिंदी से मलयाळम् में अनुवाद : डॉ. अजयकुमार का सबसे बड़ा योगदान हिंदी साहित्य की क्लासिक कृतियों को मलयाळम् पाठकों तक पहुँचाने में है। उन्होंने नरेंद्र कोहली के महासमर उपन्यास श्रृंखला का सम्पूर्ण अनुवाद किया- बंधनम् (महासमर का प्रथम खंड)/अधिकारम् (महासमर का द्वितीय खंड)/कर्मम् (महासमर का तृतीय खंड)/धर्म्मम् (महासमर का चतुर्थ खंड)/अंतराल (महासमर का पंचम खंड)/प्रच्छन्नम् (महासमर का षष्ठ खंड)/प्रत्यक्षम् (महासमर का सप्तम खंड)/मुक्ति(निर्बन्ध) (महासमर का अष्टम खंड)।

इन आठों खंडों ने महाभारत की गाथा को नए जीवन के साथ मलयाळम् में प्रस्तुत किया। इस अनुवाद-परियोजना को मलयाळम् जगत में ऐतिहासिक योगदान माना जाता है। इसके अतिरिक्त उन्होंने नरेंद्र कोहली के व्यास सम्मान प्राप्त कृति न भूतो न भविष्यति का अनुवाद विवेकानन्दम् के रुप में किया। अभ्युदयम् और कर्मयोगम् (अभिज्ञान का अनुवाद) भी उनके अनुवाद-कार्य की महत्त्वपूर्ण कड़ियाँ हैं, जिनके अनुवाद में उनकी पत्नी डॉ.के.सी.सिन्धु ने साथ दिया था। 2010 में उनका स्वर्गवास हुआ।

टैगोर और अन्य अनुवाद : डॉ. अजयकुमार ने रवीन्द्रनाथ

ठाकुर की संपूर्ण कहानियों का मलयाळम् अनुवाद टैगोर कथकल् सम्पूर्णम् शीर्षक से किया, साथ ही उनके प्रसिद्ध उपन्यास गोरा का भी अनुवाद किया, जिसके लिए उन्हें साहित्य अकादमी का अनुवाद पुरस्कार (2015) प्राप्त हुआ।

सामाजिक और राजनीतिक विषयों पर अनुवाद : सामाजिक और राजनीतिक संदर्भों में भी उनके अनुवाद महत्त्वपूर्ण हैं। उन्होंने दत्तोपन्त ठेंगड़ी की अंबेडकर सामाजिक क्रांति यात्रा और रमेश पतंगे की सामाजिक न्याय एवं डॉ.बाबासाहब अंबेडकर का मलयाळम् में अनुवाद किया। राजनीतिक जीवन के संदर्भ में अनिल माधव दवे की छत्रपति शिवाजी 'सुशासन का नमूना का अनुवाद शिवाजी सद्भरणत्तिल' मातृका शीर्षक से किया।

इसी तरह समकालीन राजनीति और नेतृत्व पर आधारित ग्रंथों में उन्होंने डॉ. आर. बालशंकर की Narendra Modi Creative Disruptor: The Maker of New India का मलयाळम् अनुवाद किया, जिसे पाठकों ने विशेष सराहा। नरेंद्र मोदी के चुने हुए भाषणों का संग्रह नरेन्द्रमोदियुटे तिरञ्ञेटुत्त प्रसंगङ्ङळ् तथा मन की बात के कई अंकों का भी उन्होंने मलयाळम् अनुवाद किया। शान्तनु गुप्ता की योगीगाथा का अनुवाद कर उन्होंने उत्तर प्रदेश के मुख्यमंत्री योगी आदित्यनाथ के जीवन से मलयाळम् पाठकों को परिचित कराया।

इन सब के अलावा हिन्दी से कई राज्यों की कहानियों का मलयाळम अनुवाद किया है तथा संकलनों में स्थान पाई है। जैसे हिमाचल कहानियाँ,उत्तर प्रदेश कहानियाँ, मध्यप्रदेश कहानियाँ, उडिया कहानियाँ, बिहारी कहानियाँ आदि।

अंग्रेज़ी में अनुवाद और प्रकाशन : उनकी कृतियाँ अंग्रेज़ी में भी पहुँचीं। Tagore – A Novel, Kalidas और Sankaracharya का प्रकाशन रु पा पब्लिकेशन्स, दिल्ली से हुआ है। Satyavan–Savitri का प्रकाशन तिरुवनन्तपुरम के अमृतसागर प्रकाशन से तथा केडीपी से हुआ है। श्री.गीतानायर, कोच्ची द्वारा किए गए इन अंग्रेज़ी अनुवादों ने उनकी ख्याति को वैश्विक स्तर तक पहुँचाया।

पुरस्कार और सम्मान : साहित्य और भाषा-सेवा में उनके योगदान को अनेक प्रतिष्ठित पुरस्कारों से सम्मानित किया गया। इनमें हिन्दीतर भाषी हिंदी लेखक पुरस्कार (2000-01), साहित्य अकादमी अनुवाद पुरस्कार (2015), विश्व हिंदी सम्मान (2018), सत्यनारायण गोइन्का अनूदित साहित्य पुरस्कार (2020) और आचार्य आनंद ऋषि साहित्य पुरस्कार (2022) नागरी रत्न पुरस्कार (2024) विशेष रुप से उल्लेखनीय हैं।

इस प्रकार, डॉ. के.सी. अजयकुमार का व्यक्तित्व और कृतित्व केवल एक लेखक या अनुवादक का नहीं, बल्कि हिंदी और मलयाळम् के बीच पुल बनाने वाले सृजनशील साधक का है। उनकी मौलिकता, गहन अध्ययनशीलता और अनुवाद-साधना ने उन्हें साहित्य-जगत में विशिष्ट पहचान दिलाई है।

आपकी नवीनतम उपलब्धि पर समूचे केरल ज्योति परिवार की ओर से शुभकामनाएँ।

मंत्री
केरल हिंदी प्रचार सभा

राजा रविवर्माचरित महाकाव्य

प्रो.डी.तंकप्पन नायर

दूसरा सर्ग
इतिहास के दौर में केरल की चित्रकला

1. शुरू की थी राजा रविवर्मा ने अपनी कला जगत की यात्रा
ब्रिटिश औपनिवेशिक प्रभुता के नीचे हो रही कलात्मक
सांस्कृतिक प्रगति के प्रकाश में जिस समय व्याप्त हो रही
थी केरल सहित पूरे भारत में राष्ट्रीय आंदोलन की आद्य किरण।

2. यद्यपि इस संसार से रविवर्मा को बिदा हुए एक शताब्दी
बीत चुकी है तथापि कला जगत में उनकी देन पर होती है
चर्चायें और होता भी है अवलोकन व अध्ययन आज भी और
हो रहा है मूल्यांकन सामाजिक सांस्कृतिक पृष्ठभूमि में।

3. ऐतिहासिक प्रासंगिकता के कारण ही अठारह सौ अड़तालीस
में शुरू होकर बीसवीं सदी के प्रथम चरण तक चल रहे उनके
कला जीवन पर होता है मनन व चिन्तन यानी उनके जन्म के
समय से उनकी मृत्यु तक का समय रखता है बड़ा महत्व।

4. उनके द्वारा हुई है अकादमिक रियलिज़म की सूक्ष्म
वर्णात्मक अभिव्यक्ति और बन गये वे इस शैली में प्रगल्भ
और इसके अलावा प्रयोग में लाकर यूरोपीय चित्रकला
शैली को विशेष रूप से उसमें भी हो सके वे सफल।

5. चुना था राजा रविवर्मा ने भारतीय विषयों को
प्रतिपाद्य के रूप में और प्रस्तुत किया उसमें उन्होंने भारतीय
मिथकों, इतिहासों और पुराणों के पात्रों और संदर्भों को
और रंगों के माध्यम से उन्हें दी कलात्मक अभिव्यक्ति।

6. तत्कालीन शिक्षित भारतीयों में प्रचलित थे विभिन्न दृष्टिकोण
राष्ट्रीयता विषयक और रविवर्मा का चित्रकला दर्शन प्रभावित
था राजामोहन राय और गोविंदरानडे के विचारों से और उनपर
हुआ आरोप साम्राज्यवादी मनोभाव के प्रति हीनता की भावना का।

7. सब के प्रति मैत्री थी उनकी और एक ही समय में उनकी मैत्री
थी ब्रिटिश शासन के साथ बेहद ताबेदारी करनेवाले रियासतों के
अधिकारियों के साथ और प्रमुख नरमपंथी देशीय नेताओं के साथ और

सर्वोपरि पाश्चात्य बुद्धिवादी प्रगतिवादी कलाकारों व विचारकों के साथ।।

8. इन मनीषियों के साथ उनकी सर्जनात्मक प्रक्रिया से ही
स्पष्टता मिली रविवर्मा के कलादर्शन को और असल में
रविवर्मा के आरंभकाल का स्थायी भाव था आंग्लो-
भारतीय समन्वय में अधिष्ठित सहभावपूर्ण देशीयता ही ।

9. मत है कुछ आलोचकों का कि नवजागरण काल में
राजा रविवर्मा ने देखकर चित्रों की प्रतियाँ इटली के
और समझकर उनकी रचना शैली समन्वय किया है उसे
भारतीय महान परम्परा में अन्तरलीन शैली विशेषताओं से।

10. भिन्न होकर पाश्चात्य चित्रकारों में प्रचलित छायाचित्र रचना
रीति से रविवर्मा की वैविध्यपूर्ण चित्र रचनायें रखती हैं अलग
स्थान और रूपगठन के अवतरण के साथ प्रस्तुत करने में
हुए वे सफल नवीन दृष्टिकोण एवं नये विचार की अभिव्यक्ति में।

11. जहाँ भारतीय चित्रकारों ने पूर्णरूप से स्वीकार किया था
पाश्चात्य रचना शैली को वहाँ रविवर्मा ने स्वीकार करके
पाश्चात्य रचना शैली की केन्द्र शक्ति को तैलचित्र
रचना में नई शैली का किया सूत्रपात जो है महत्वपूर्ण।

12. रविवर्मा के चित्रों को मिली नई शक्ति अनुष्ठान कलारूपों
परंपरागत लोक कलारूपों के शक्तिस्रोत से गृहीत रूपवर्ण के
मेल से और किया है उन्होंने उपयोग लोककलाओं के पात्रों के
मुख का अलंकरण और अन्य अलंकार में विद्यमान रंगों का ।

13. रविवर्मा की पूर्व पीढ़ी ने नृत्त-नृत्य साहित्य संगीत जैसी सुकुमार
कलाओं और चित्र-शिल्प कला जैसी ललित कलाओं में व्याप्त
भारतीय परंपरा और संस्कृति की अंतरचेतना से पाकर प्रेरणा
रचना की थी और अनन्तर होता रहा उनका रूप परिणाम ।

14. रविवर्मा ने पदार्पण किया चित्रकला के क्षेत्र में अपने
पूर्वसूरियों में से एक होकर और समझ लिया था उन्होंने
अच्छी तरह अनुष्ठान कलारूपों, संस्कृति और परंपरा की
मुद्राओं एवं उनकी अलंकार भंगिकाओं अंगचलन आदि को।

15. रविवर्मा की कला में घुलमिल गयी हैं प्रादेशिक कला-
शैलियाँ भी और केरलीय चित्रकला विकास की सीढ़ियाँ पार
की हैं दक्षिण भारत के भित्ति चित्रों के द्वारा भी और चित्रकला के
इतिहास में अत्यन्त महत्वपूर्ण रही है आलंबन भित्ति चित्रों का। (क्रमशः)

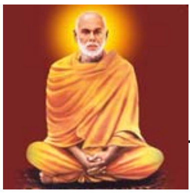

दर्शन माला

डॉ नेलसन डी

अध्यारोप दर्शन

(केरल के महान संत, ऋषि-कवि, समाज सुधारक श्रीनारायणगुरु द्‌वारा संस्कृत में रची गई वेदांत-संबंधी रचना है 'दर्शनमाला।' दस-दस श्लोकों के दस भाग इसमें समाहित हैं। मुनि नारायण प्रसाद की मलयालम-व्याख्या का हिंदी भाषांतरण डॉ नेलसन डी ने तैयार किया है। - संपादक)

अध्याय 1

आसीदग्रेf सदेवेदं भुवनं स्वप्रवत् पुनः।
ससर्ज सर्वं संकल्पमात्रेण परमेश्वरः।।

(पूर्व प्रकाशित से आगे)

इस प्रपंच की सृष्टि किसने की अथवा ऐसा विचार किसने किया, किसके लिए किया, कैसे किया? सब जानते हैं कि यहाँ जो दिखाई देते हैं वे स्थाई नहीं रह सकते। यदि स्थाई हैं तो इन प्रश्नों की कोई प्रसक्ति नहीं होती। किंतु स्थिति वह नहीं है। अतः प्रश्न प्रसक्त हैं। इससे सोचना पड़ता है कि सृष्टि चल रही है। यहाँ कहा जाता है कि सृष्टि की रचना किसने की, और कैसे की।

यदि दृश्यलोक बनाया गया है तो यह निश्चित है कि सृष्टि से पहले वह नहीं था। इसलिए कहते हैं कि "इदं भुवनम् अग्रे असदेव आसीत्।" (यह संसार आदि में न होने वाला ही रहा था।) यहाँ असत् होकर (नहीं होकर) भुवन का परामर्श करते हैं, परम सत्य के संबंध में नहीं। अब संसार सच्चाई की तरह दिखाई देता है। मतलब यह है वह सृष्टि से पहले असत् था। इस प्रकार का एक वचन तैत्तिरीयोपनिषत् 2.6.1 में आता है - "असद्धा इदमग्र आसात्, तो वै सदजायत।" (आदि में यह संसार असत् था, उससे यह सच्चाई हुई)। हम जानते हैं कि अभाव किसी की भी उत्पत्ति का कारण नहीं होगा। यहाँ बताया हुआ अभाव सत्य का नहीं; संसार का ही है।

वेदांत की अंतिम हालत के अनुसार उपर्युक्त बातें तत्त्वविरोधी लगेंगी। यह कहना पड़ता है कि आदि में असत् नहीं था, यही कहें कि सत् था। वह सत् आत्मा है। "आत्मा वा इदमेक एवाग्र आसीत्" (आदि में केवल एक ही आत्मा थी) वैसे ऐतरेयोपनिषत्1.1.1 में भी कहा गया है "सदेव सोम्य इदमग्र आसीत्" (सौम्या, आदि में केवल सत् था), ऐसा ही छान्दोग्योपनिषत् 6.2.1 में भी कहा गया है। इस प्रकार देखें तो ऐसा लगेगा कि दर्शनमाला की पहली पंक्ति का इस प्रकार अन्वय करना है कि "इदं भुवनम् अग्रे सदेव आसीत्।" (यह संसार आदि में केवल सत् था।) यह वेदांत सिद्धांत के अनुसार गलत नहीं। फिर भी इस दर्शन के विशेष स्वभाव के लिए यह सहमत नहीं होगा। यहाँ का विचार-विषय परम सत्य नहीं, "इदं भुवनम्" (यह संसार) है। पहले ही मानते हैं कि यह संसार यथार्थ है। हमें यही उत्तर मिलना चाहिए वह कैसे हुआ। इस प्रकरण में मानते भी हैं कि वह निर्मित है। तब कहना पड़ेगा कि सृष्टि के पूर्व वह नहीं था। यहाँ कहा गया "असत्" संसार के अभाव की सूचना देता है। छान्दोग्योपनिषत् में कहनेवाला "सत्" आत्मा की सच्चाई का सूचक है। यह अंतर बहुत मुख्य है। (क्रमशः)

युगद्रष्टा विद्‌याधिराजा चट्‌टंपिस्वामी का व्यक्ति-कृति जीवन : एक संक्षिप्त अवलोकन

मूल : डॉ ए एम उण्णिकृष्णन **अनुवाद : डॉ प्रियारानी पी एस**

तिरुवनन्तपुरम, कण्णनमूला के उल्लूरकोट्टू भवन में जन्मे श्री चट्टम्पिस्वामी औपचारिक शिक्षा प्राप्त नहीं कर सका था। हालाँकि माता-पिता, जो अत्यधिक गरीबी में थे, अपने बेटे की ट्यूशन फीस का भुगतान नहीं कर सकते थे, (कुंजन पिल्लई उनका वास्तविक नाम था, माता-पिता ने उन्हें 'अय्यप्पन' पुकारा था।) फिर भी वे ज्ञानी बन गये। कुंजन को घर के पास के एक स्कूल में दाखिला लेने की कहानी सुनकर किसी को आश्चर्य होगा (1863), जहाँ कोल्लूर शास्त्री ब्राह्मण लडकों को पढ़ाते थे। शास्त्री बच्चों से एक दिन पूर्व पढाए गए पाठ से प्रश्न पूछ रहे थे। लेकिन किसी ने जवाब नहीं दिया। तब कहीं से सही उत्तर सुनाई देता है। शास्त्री को लगा कि वह एक निराकार ध्वनि है। उन्होंने बाहर आकर देखा। तब पाठशाला के बाहर एक लड़का नम्रता पूर्वक खडा है। वह कुंजन था। चूंकि उसे स्कूल में प्रवेश करने की अनुमति नहीं थी, इसलिए वहीं छिपा हुआ था और पढ़ रहा था। शास्त्री ने उसे जिज्ञासपूर्व देखा। पढने की उनकी रुचि ने उन्हें प्रसन्न किया। उन्होंने उसमें बुद्धि और ग्रहण शीलता ऐसे शक्तिदेखी जो उनके सामने रहने वाले अन्य बच्चों में नहीं थी। शास्त्री जी की उदारता से कुंजन को पाठशाला में भर्ती करा दी गयी। बिना फीस दिये पढ़ाई करने की अनुमति मिली।

बाद में कुंजन पेटटा में रामन पिल्लै नामक शिक्षक के 'कुडिप्पल्लिकूडम' में (1866) शामिल हो गये और जल्दी ही खुद को कक्षा में सबसे चतुर छात्र साबित कर दिया। जब अध्यापक जी कक्षा में नहीं होता था तब बच्चों को पढाने और कक्षा संचालन की जिम्मेदारी उन पर आ गयी। बाद में आप 'चट्टम्पि' (monitor) के नाम से जाना जाने लगे। मलयालम और गणित के अलावा कुंजन पिल्लै ने शास्त्र, तर्क और वेदांत का भी अध्ययन किया। तमिल और संस्कृत में भी अभिरुचि रखी गयी थी। उन्होंने दिन में पढाई करने और रात में पास के देवी मंदिर में ध्यान करने में बिताया। बाद में वे रामन पिल्लै द्वारा संचालित एक मंडली 'ज्ञानप्रजागरम' (1872) में भी प्रमुख हो गये। इसी बीच एक अज्ञात तपस्वी के शिष्य होकर 'षण्मुखदास' नाम (1867) स्वीकार किया।

घर की आर्थिक समस्याओं के कारण कुंजन पिल्लई को कम उम्र में ही कई काम करना पड़ा। इसमें कोल्लूर मठ में गणित लेखन(1861), हजूर कच्चेरी (सरकारी सचिवालय) के निर्माण के लिए मिट्टी ले जाना (1868), और सचिवालय में लेखाकार का काम (1871) भी करते थे। 'ज्ञानप्रज्ञागरम' में उनकी मुलाकात स्वामिनाथ देशिकर से हुई, जिनके पास से तत्व ज्ञान(1875) और तैक्काड अय्यागुरु से हठ योग की (1874) दीक्षा भी मिली। यूनिवर्सिटी कॉलेज के अध्यापक सुन्दरम् पिल्लै से पाश्चात्य दर्शन भी प्राप्त किया। इसके साथ, संगीत, चित्र कला, शिल्प विद्या का अध्ययन भी किया तथा अक्षरश्लोक और समस्या पुराण में भी उनकी विशेष रुचि थी।

खूशी की बात तो यह है कि नवरात्री उत्सव के एक दिन उनकी मुलाकात कल्लडकुरिच्ची के सुब्बाजटापाठी से हुई। कुंजनपिल्लई के व्यक्तित्व में आकृष्ट होकर उस पंडित ने वापस जाते समय उन्हें

भी साथ लिया। तमिल प्रांत में आये कुंजन पिल्लई उस गुरु और गुरु -पत्नी को बेटा जैसा बन गया। दिन भर उस ब्राह्मण ने अपने अब्राह्मण शिष्य को कई तरह के अभ्यास विद्या सिखाए। रात में कुंजन ने ग्रन्थों को पढ़कर खुद ही अन्य विद्याओं को अर्जित किया। तमिलनाडू में रहते समय उन्होंने अनेक विध्यायें सीख लीं। एक मुसलमान पंडित को संस्कृत में अभ्यास कराया, उसके बदले उनके पास से अरबी और खुरान का अध्ययन (1880) किया। बाइबिल में भी ज्ञान प्राप्त (1879) किया। लगभग चार साल तक के पठन की पूर्ति करने के बाद अपने देश में आते वक्त उन्होंने मरुत्तामला के एक गुफा में तपस्या की (1876-1879)। वहाँ से वापस आते समय एक अज्ञात योगी से उन्होंने अगस्त्य योग मार्ग और आंतरिक अंगों को बाहर निकालकर साफ करने की विद्या और जल स्तंभ, वायु स्तंभ, और कई अन्य असाधारण अभ्यासों को भी प्राप्त किया। अपने देश में वापस आने के पहले ही राजयोग में भी कुंजन पिल्लई अग्रणी बन गये।

नगरकोविल के पास वडवीश्वर नामक एक गाँव के एक शादी स्थल के समीप के कूडे कचड़े के पास देखा एक अपरिष्कृत मनुष्य ने कुंजन पिल्लई के जीवन को बदल दिया। कुंजन पिल्लई को देखकर उस आदमी ने वहाँ से भागने का प्रयास किया। कुंजन पिल्लई ने उसका पीछा किया। अंत में एक निर्जन स्थान पहुँचते ही उस आदमी ने कुंजन पिल्लई की छाती में हाथ लगाकर उनके कानों में एक दिव्य मंत्र(1881) सुनाया था। तभी कुंजन पिल्लई ने जो सुनना चाहते थे वह सुन लिया। तदुपरांत अखण्ड सच्चिदानंद अनुभूति में मग्न हो गये। उनके सामने एक मानव के रूप में आने वाला साक्षात् श्री परमेश्वर थे।

वे अपना देश वापस आए। वह शंकराचार्य के वापसी यात्रा के समान था। मृत्यु शय्या में पडी अपनी माँ की देखभाल के लिए ही दोनों आए थे ।माँ की मृत्यु के बाद सभी लौकिक बंधनों से मुक्त चट्टम्पिस्वामी स्वतंत्र हो गये।1924 मई 5 को महासमाधि में जाने के समय तक के 43 वर्ष एक परमात्मा की तरह वे अपनी अद्भुत लीलाओं से केरल का उत्थार करते रहे। बच्चों के सामने एक अच्छा साथी , गृहस्थ स्त्रीयों को खाना पकाने का तकनीक और गृह चिकित्सा का विद्या भी सिखाया। वे घरवालों के लिए बुजर्ग, पंडितों के बीच महा पंडित, सन्यासी गण के बीच महा तपस्वी बने। लोग जिस रूप में उनको देखना चाहते हैं उसी रूप में वे उनके सामने खडे हो जाते हैं। वे प्रेम के प्रतीक, ज्ञान के अवतार, अहिंसा का प्रतीक और सभी कलाओं के निपुण भी है।

केरल केन्द्रिय विश्वविद्यालय
राजधानी केन्द्र, तिरुवनंतपुरम

नवागत हिंदी प्रचारक पुरस्कार नाम से केरल हिंदी प्रचार सभा ने इस वर्ष से एक प्रचारक को पुरस्कार देने का निर्णय किया है। उक्त पुरस्कार की रकम रु. 5001/- है। प्रथम पुरस्कार की रकम का प्रायोजन श्रीमती पी जगदम्मा (डॉ पी जे शिवकुमार की पूज्य माताश्री) करेंगी। पहला पुरस्कार 28-09-2025 को आयोजित हिंदी पखवाडा समापन सम्मेलन में मंत्री प्रदान करेंगे।

स्त्री संवेदना का हरित पक्ष

डॉ शांती नायर

पिछ्ले ढाई दशक से हमारी भाषा में जहाँ प्रकृति के संकट कविता का विषय बन रहा है वही हरित संवेदना भी कविता के कलेवर में अभिव्यक्ति पा रही है। वस्तुतः ऐतिहासिक दृष्टि से इनका विशेष महत्व है सम्भवतः अनुपात की दृष्टि से इतिहास के किसी भी काल में प्रकृति और पर्यावरण के मुद्दों पर ध्यान केंद्रित कर इतनी रचनाएँ नहीं की गई हैं। ऐसा नहीं है कि ये पहले हमारे साहित्य प्रकृति सौंदर्य, प्रकृति का शोषण, प्रकृति और मनुष्य के बीच का द्वंद्वपूर्ण संबंध जैसे विषय नहीं थे। आज़ादी के आस पास और अनन्तर की हिन्दी सहित कई भारतीय भाषाओं की कविताओं में प्रकृति और पर्यावरण से सम्बन्धित चिन्ताएँ सशक्त रूप से उभर कर आयीं। सवाल उठता है कि ये इन कविताएँ अपने स्वभाव में पूर्ववर्ती कविताओं से भिन्न क्यों दीख पडती है? सम्भवतः इसके पीछे का कारण यह है कि इस समय कुछ आहटें सुनाई दे रहीं थी जिनमें अनन्त विस्तृत इस पृथ्वी पर कुछ अवांछित घटित होने की आशंकाएँ थीं। मनमाने उपयोग से प्रकृति की हरितिमा और समृद्धि का विलोप स्त्री कविता का भी विषय बन कर उभरा। प्रकृति और मनुष्य के सम्बन्धों में आने वाली विकृति व नाश की व्याकुलता को स्त्री कविता कुछ अलग कोणों से उठाती है।

पितृसत्तात्मक व्यवस्था जिस प्रकार स्त्री के सहज जीवन में हस्तक्षेप करती है, उसी प्रकार प्रकृति में भी करती है। प्रकृति एवं स्त्री दोनों की उर्वरता को वह नियंत्रित करती है। स्त्री एवं प्रकृति की सहजता एवं स्वाभाविकता में व्यवस्था द्वारा हस्तक्षेप होता है। हिन्दी की सुप्रसिद्ध कवयित्री कात्यायनी कविता 'एक भूतपूर्व नगरवधू की दुर्ग पति से प्रार्थना' में इस संदर्भ को हम देख सकते हैं। कविता मांग करती है कि व्यवस्था के भीतर स्त्री को भोग वस्तु के रूप में मानने की जो मानसिकता पनप रही है ,उसका सर्वथा त्याग होना चाहिए। कविता में स्त्री प्रकृतिदत्त वास्तविक रू प में अपने को प्रतिष्ठित करने की कामना करती है। जिस स्त्री शरीर को साधन मानकर, सौंदर्य पिपासा या काम पिपासा को शांत करने के लिए प्रयुक्त किया जाता रहा है , कविता उसके नितांत प्राकृतिक महत्व की ओर पाठक को ले जाती है। चित्रकला, मूर्तिकला, साहित्य तथा घर बाहर सभी क्षेत्रों में जिसे काम और सौंदर्य का प्रतिमान माना गया, विविध तरीकों से भोगा गया स्त्री के उन स्थानों का प्राकृतिक धर्म शिशु को दूध पिलाने का है। मनुष्य को छोड़कर सभी जीवो में ये शिशु को दूध पिलाने के धर्म को निभाते हैं। न कि नर जीव की काम पिपासा शांत करने के लिए। कविता कहती है- "देखो मेरे स्तनों से बहता हुआ दूध/उस अप्रतिम सौन्दर्य के अवशेषों को भी/मटियामेट कर रहा है /जो कभी पागल बना देता था तुम्हारे लोगों को।/मुझे इन स्थानों को/प्यासे विकल शिशु अधरों तक ले जाने दो।" (कात्यायनी)

इन पंक्तियों में स्त्री की वह कामना निहित है, जिसमें वह अपने मूल प्राकृतिक रूप को प्राप्त करना चाहती है।और उसी के अनुसार जीने की कामना करती है।

स्त्री प्रकृति के संदर्भ में कुछ भी कहने की अधिकारिणी नहीं होती। पत्थरों की अवैध कटाई हो या प्रकृति का दोहन। इन सभी के खिलाफ बोलने वाली औरत देश के कई हिस्सों में आज भी डायन करार दी जाती है। इस विडंबना को स्त्री कविता व्यक्तकरती है ।यहाँ एक नागरिक होने के नाते स्त्री आज भी सुरक्षित नहीं है। इस बात की और भी निर्मला पुतुल इशारा करती हैं- "यहाँ तो जौहर और माझी धान के देवता भी बिक जाते हैं बोतल भर दारू में।" (निर्मला पुतुल)

आज विकास के नाम पर परियोजनाओं को महत्वाकांक्षा का जीता जागता सबूत कहकर महिमामंडित किया जा रहा है। परंतु स्त्री कविता ऐसी विकास परियोजनाओं पर प्रश्नचिह्न लगाती है, जो आम आदमी से उसके जीने का अधिकार छीन लेती है। स्त्री कविता इस बात की ओर इशारा करती है कि किस प्रकार विकास के नाम पर होनेवाले हस्तक्षेप प्रकृति का तो नाश कर ही रहे हैं साथ ही साथ आदिवासी परगनाओं की संपूर्ण संस्कृति को जड़ से उखाड़ रहे हैं। प्रकृति और संस्कृति का यह नाश सबसे अधिक प्रभाव डालता है आदिवासी स्त्री के ऊपर। स्त्री ही प्रकृति पर सर्वाधिक आश्रित रहती है । यही उसकी आत्मनिर्भरता है, और आत्मविश्वास भी। 'संथाल परगना' कविता प्रकृति के विनाश को रेखांकित करती है।

यहाँ भूमि तो उसे छीन ही ली जाती है साथ ही साथ जन समुदायों की अपनी निजी संस्कृति और उसमें निहित अनेक प्रकार के ज्ञान के तत्वों का भी लोप हो जाता है। वर्तमान के जीते जागते मनुष्य को उसके पूरे वजूद के साथ इतिहास में तब्दील कर दिया जाता है । स्वास्थ लाभ के लिए उसे अतीत बना कर छोड़ देने की यह प्रक्रिया वास्तव में अमानुषिक है। और इसे भी कविता व्यक्त करती है - "तीर धनुष मांदल नगाड़ा बांसुरी/सब बटोर लिए जा रहे हैं।/लोक संग्रहालय/समय की मुर्दा गाड़ी में लादकर।" (निर्मला पुतूल)

पर्यावरण विभाग ने जिन गैर सरकारी प्रवृतियों को जन्म दिया है उनमें पर्यावरण की रक्षा का काम करने वाली गैर सरकारी संस्थाएँ एवं विशेषज्ञ सलाहकारों की सेवाएं गैर सरकारी संस्थाओं की तो ऐसी बाढ़ आ गई है कि इन का ब्यौरा और अता-पता रखने के लिए मार्गदर्शिका पुस्तिकाएँ तक का अपना भी एक उद्योग बन गया है । ग्रामीण जनसंख्या प्रधान भारत के पर्यावरण की रक्षा करने वाली इन संस्थाओं के कार्यालय मुख्यता दिल्ली राज्यों की राजधानियाँ और विश्वविद्यालयों के प्राध्यापक और कहीं कहीं पर व्यवसायी लोग हैं। ये सरकारों और विदेशी संस्थाओं से अनुदान प्राप्त करने के तौर तरीकों में सिद्ध है। इनका मुख्य कार्य सम्मेलन ,परिसंवाद, कार्यशालाएँ चलाना और शिविर संगठित करना उसके बाद पुस्तक रू प में उसकी रिपोर्ट लेना होता है। पर्यावरण विभाग की मुख्य प्रवृत्ति इनको सहायता देनी रही है। इस प्रकार की संस्थाओं के माध्यम से पर्यावरण की रक्षा एक आंदोलन न बन कर एक व्यवसाय बन गया है।

पश्चिम का प्रकृति के साथ रिश्ता प्रतिपक्षी का रहा है । इस पर विजय पाने का । परन्तु हमने प्रकृति को अपने से अलग नहीं माना है। आज व्यावसायीकरण, बाजारीकरण ,नगरीकरण आदि के फलस्वरूप मनुष्य का नैतिकता बोध नष्ट होता जा रहा है। निर्मला पुतूल की 'बूढ़ी पृथ्वी का दुख' कविता में हम इस मुद्दे को देखते हैं जिस प्रकृति में हम जी रहे हैं उसके प्रति हम कितने उदासीन हैं। यहाँ तक कि मनुष्य इंद्रिय सुख मात्र के लिए किसी का भी शोषण करने पर उतर आया है । वहीं दूसरी ओर दशा यह है कि जीवन को जी लेने की तेज रफ्तार में हममें अपने चारों ओर के परिवेश और प्रकृति के किसी भी ध्वनि गंध दृश्य के प्रति संवेदना जागृत नहीं हो रही है।

परिस्थिति से संबंधित समस्याओं पर गौर फरमाने वाले अनेक 'सिटिजन इनीशियेटिव' रूप आज मौजूद है। परंतु वह एक प्रकार की निराशा को परस्पर बाँटने भर में अकसर सीमित रह जाते हैं । यहाँ निर्मला पुतुल जैसे हस्ताक्षर निराशा तक सीमित रह जाना नहीं चाहती हैं। 'बिटिया मुर्मू के लिए' कविता में निराशा के खिलाफ खड़े होने का आह्वान करती हैं- " देखो अपनी बस्ती के सीमांत पर/जहाँ धराशाई हो रहे पेड़/कुल्हाडयों के सामने असहाय/रोज नंगी होती बस्तियाँ/एक रोज मांगेंगे तुमसे/ तुम्हारी खामोशी का जवाब" (निर्मला पुतुल)

उपयोग के उपरांत प्राकृतिक संपदा को हमें अगली पीढ़ी के हाथों में सौपनी है। यह जिम्मेदारी मनुष्य की है। परन्तु यह प्रकृति हमारे ही समय में भी नष्ट होती जा रही है। पर्यावरण से समाज और समाज से राष्ट्र का विकास होता है। इसलिए स्त्री कविता कहती है कि 'आओ मिलकर बचाएँ'। एक साथ मिलकर प्रकृति की रक्षा का आह्वान स्त्री कविता करती है । बस्तियों को नंगी करने वाली आबोहवा से बचाने, पूरी बस्ती को नशे से बचाने, आँचलिकता और भाषिक अस्मिता को बचाने, जीवन को स्फूर्ति प्रदान करने वाली मन की संवेदना को बचाने ,भोलेपन के साथ-साथ अक्खड़पन और जुझारूपन प्रतिरोध की ताकत को बचाने और साथ ही में जंगल नदी पहाड़ मिट्टी फसल से भरी प्रकृति को बचाने का आह्वान स्त्री कविता करती हैं। वह दृढ़ विश्वास के साथ कहती हैं इस दौर में भी बचाने को बहुत कुछ बचा है अभी हमारे पास।

गांधीजी के अनुसार प्राथमिक आवश्यकताओं की पूर्ति करना ही विकास की प्रथम देन होना चाहिए परंतु आज विडंबनात्मक स्थिति यह है कि लोग ऐसे विकास का सपना देखने लगे हैं जो दूसरों को उजाड़ने और अपना स्वार्थ संपन्न करने पर आधारित है। इसी कारण आज पर्यावरण के विकास के नाम पर कठोर शोषण हो रहा है विकास के नाम पर होने वाले प्रदूषण और विस्थापन किस प्रकार जंगलों आदिवासियों बस्तियों को अपनी चपेट में ले जाता है इस निर्मम सत्य को स्त्री अपनी कविता में रेखांकित करती है।

'बहामुनि' कविता में निर्मला पुतुल बताती हैं कि विकास के समाज को पर आधारित ना होने के कारण बहुत संख्या में साधारण जनता का जीवन बद से बदतर होता चला जा रहा है। जिन घरों के लिए बनाती हो झाड़ू उन्ही से

आते हैं कचरे तुम्हारे घर में। झाड़ू यहां विकास है और इन गरीबों की सहायता, श्रम से ही संपन्न होता है यह विकास। परंतु इस विकास का दुष्परिणाम भी इन्हीं को झेलना पड़ता है। विकास और पर्यावरण को लेकर बैठक की योजनाएं बन रही है पर इन का खोखलापन भी तभी सामने आता है जब तथाकथित नागरिक ही समाज बोध से रहित होकर नारा लगाते हैं।

कृत्रिम शहरी वातावरण में जो उपभोक्तावादी संस्कृति का परिवेश है वह मनुष्य के प्राकृतिक स्वाद और रुचियों दायरे से बाहर चले जाते हैं। समकालीन कविता का स्त्री स्वर इसके प्रति नकार को अभिव्यक्ति देता है - "सब्जी रोटी सरकाई/दाल भी तुमको ना भाई /छोड़ रहे मूली ताजी /यह कैसी नखरे बाजी"

इनकी जगह कृत्रिम रुचियाँ ले लेती है। कृत्रिम जरूरतों के दबाव में आदमी की भूख तक मिट जाती है। तरह-तरह के चटकारों से स्वाभाविक भूख दब जाती है । फिर तरह-तरह के चमत्कारों से कृत्रिम भूख जगाई जाती है। "खुश हो कर खाओ खिचड़ी/यह भी तो स्वादिष्ट बड़ी/ अरे दही से नाराज़गी/छोड़ो भी नखरेबाजी/ठंड शरबत पी करके/आइसक्रीम पर जी करके/ हारोगे जीती बाजी। (उषा यादव)

अपने देश की प्रकृति से कटने वाले नागरिक के लिए यह एक चेतावनी है कि अपनी अस्मिता को खोकर ऐसी किसी सभ्यता (स्वाद)का वरण नहीं किया जाए जो हमारी प्रकृति के अनुकूल ना हो । आयातित संस्कृति मनुष्य के भीतर रस गंध स्पर्श आदि सभी मार्गो से प्रवेश करती है। जहाँ रसना अपना निजी स्वाद भूलकर बाजार द्वारा प्रदत स्वाद की गुलाम हो जाती है, यहाँ मनुष्य अपनी प्रकृति के स्वाद से आनायास काटकर अलग कर दिया जाता है। बाजार अपने को बनाए रखने के लिए सशक्त हथियार इसी के माध्यम से तैयार करके तीसरी दुनिया के देशों को अपना गुलाम बना लेता है। जिसमें भूख का प्रकृति से कोई संबंध नहीं होता ऐसे किसी भी हद तक उकसाया जाता है। यह उकसाना भी प्राकृतिक ना होकर किसी कृत्रिम स्वाद के लिए होता है। संदेह इस बात को लेकर भी होने लगता है कि वह दिन दूर नहीं जब जीव विज्ञान की जेनेटिक इंजीनियरिंग जैसी उपलब्धियों का प्रयोग करके मनुष्य की स्वाभाविक रु चि को भ्रूण अवस्था में ही समाप्त कर दिया जाएगा। तब स्वाद का अर्थ सीधा शक्तिशाली कंपनियों द्वारा निर्मित कृत्रिम हानिकारक भोज्य पदार्थों का भोग करना हो जाएगा। हम देखते हैं कि भारतीय समाज में आज बाजारवाद का विरोध स्त्री द्वारा होता है । यहाँ कविता में भी इस विरोध और चिंता को हम देख सकते हैं कि ऐसा करने से हारोगे जीती बाजी अर्थात जिस आत्मनिर्भरता को बनाए रखने के लिए हमने लड़ाइयाँ लड़ी थीं उसे मात्र चटखारेपन से हमें खो नहीं देना चाहिए।

अपनी जातीय अस्मिता और क्षमताओं के साथ अपनी प्रकृति से अपना रिश्ता अपनी स्वाभाविकता के माध्यम से कायम रखना होगा इसी का आह्वान स्त्री 'पुरानी हंसी' कविता में करती है- "नई परिभाषाओं की भीड़ में/ संभाले जाने चाहिए पुराने संबंध/नदी और जंगल

रेत और आकाश/प्यार और प्रकाश" (अनीता वर्मा)

'जामुन का पेड' कविता में जामुन के पेड़ के माध्यम से प्रकृति और मनुष्य के रागात्मक और संवेदनात्मक संबंध को सूचित किया गया है। मनुष्य और प्रकृति के मेल से जिस सामाजिकता का रू पायन होता है उसके ह्रास कारण उत्पन्न वेदना को कविता अभिव्यक्तिदेती है । घर के पास उपस्थित जामुन का पेड़ जीवन का एक हिस्सा है। वह पेड़ प्रकृति है और इस पर विश्वास करते हुए गौरवान्वित होते हुए जिस बचपन और किशोरावस्था का रूप आयन होता है वह अपनी अस्मिता के प्रति विश्वास जगाता है- ""बेहद घना और विशाल/इतना ऊँचा कि/मैं सोचा करती थी /पेड़ की सबसे ऊँची डाल पर चढ़कर/छुआ जा सकता है आसमान भी" (ज्योती चावला)

ढेर सारी स्मृतियाँ जामुन के पेड़ से जुड़ी है। जिसमें कवियत्री महसूस करती हैं कि हमारा बढ़ना इस पेड़ के अर्थात प्रकृति के साथ ही रहा है। स्मृतियाँ मानव राशि की धरोहर होती हैं और संस्कृति के निर्माण में इनका योगदान कभी भी नगण्य नहीं रहा है। निःसंदेह प्रकृति भी इन स्मृतियों में शामिल रहती है- "उस पेड़ से जुड़ी मेरे बचपन की ढेरों स्मृतियाँ/जामुन के पेड़ के नीचे खेलते कूदते बढ़े हुए हम" (ज्योती चावला)

सुख दुख में सहचरी रहती है। प्रकृति मनुष्य भावों के आवेग में प्रकृति को ही अपना साथी पाता है। यह मनुष्य और प्रकृति के बीच के संवेदनात्मक संबंध की ओर इशारा करता है। कवित्री इस प्रकृति को जननी के समान ही आश्रय और शुभचिंतक के रूप में महसूस करती हैं।यह प्रकृति आत्मविश्वास है। इसकी सूचना भी कविता देती है

और कहती है कि - “यह विश्वास भी कि जामुन का यह पेड़/मुझे गिरने नहीं देगा” (ज्योती चावला)

उल्लास के मनुष्य के क्षण भी यहाँ प्रकृति के साथ जुड़े रहे हैं बचपन के छोटे पलों से लेकर योवन और वार्धक्य तक के उल्लास के क्षण पेड़ से ही जुड़े रहे हैं। यहां हर्षित पलों का सहचर होकर पेड़ का अस्तित्व जीवन के अस्तित्व से जुडता है। बिजली गुल हो जाने पर पेड के नीचे मचाया जाने वाला हुडदंग , यांत्रिकता से भरे जीवन से थोड़ा परे हटने का समय है जो मनुष्य को कम कभी-कभी मिल जाता था। उसे पेड़ के नीचे बिताने की स्मृति यहां मात्र निजी खुशी के ‘नोस्ताल्जिया’ का वर्णन मात्र नहीं है अपितु पेड़ के नीचे उपजी एक सामाजिकता की ओर किया जाने वाला संकेत भी है।

घर वास्तुतः एक ऐसी संकल्पना है, जिसमें मनुष्य का जिसमें मनुष्य का अपनापा है। इससे उसका अपना वजूद जुड़ा रहता है। घर की किसी भी संकल्पना के साथ अवैध रूप से जुड़ी जामुन के पेड़ की संकल्पना भी यहाँ पर दिखाई देती है। “घर से दूर घर को याद करते हुए/ साथ खड़ा दिख जाया करता था/वही जामुन का पेड़ (ज्योती चावला)

यहाँ हम देखते हैं कि प्रकृति के प्रति कविता का जो अप्रोच है वह वस्तु के रूप में नहीं है। वरन अपने एक हिस्से के रूप में है। जैसे व्यक्ति के मन में ‘मेरा घर’ एक भावनात्मक लगाव पैदा करता है। प्रकृति को महत्व देने वाली भारतीय संस्कृति की भी यही विशेषता है। प्रकृति को काटकर अलग कर देने के साथ ही इस संस्कृतिक से भी यह भाव तिरोहित होता नज़र आता है- “जामुन का पेड़ अब नहीं है वहाँ/घरों की इमारतें इतनी ऊँची होती जा रही हैं/उतने ही छोटे होते जा रहे हैं उनके दिल/उन छोटे दिलों में अँट नहीं पाता/वह विशाल जामुन का पेड़” (ज्योती चावला)

दिलों का छोटा हो जाना यहां अपनी विशालता की संस्कृति से कट जाना है और स्वार्थ की संस्कृति का वर्णन कर लेना है।

पेड़ के अभाव में कवियत्री को अपने घर की पहचान अधूरी लगती है। सुख और सुविधा के प्रति होने वाले रुझान के कारण प्रकृति से कटे मनुष्य की अस्मिता भी इसी प्रकार अधूरी रह जाती है। पेड़ के अभाव में घर अब राहगीरों को की पहचान में नहीं आता और संस्कृति की जिस विशालता और महत्व के कारण भारत विश्व भर में जाना जाता था वह पहचान भी आज वह खो रहा है। कविता सूचित करती है कि अपनी प्रकृति से पटना अपनी अस्मिता से कटना है।

‘अब राहगीरों को होगी
मेरा घर ढूंढने में कठिनाई
कि मोड़ पर खड़ा वह पेड़
अब कहीं इशारा नहीं करेगा’ (ज्योती चावला)

वर्तमान समय में हमें भूमंडलीकरण के माध्यम से आते शहरीकरण के प्रभाव में हमने बहुत कुछ खोया है ।घर के बुजुर्ग हमारा इतिहास रहे हैं। हमारी संस्कृति की बुनियाद रहे हैं ।यह प्रकृति भी हमारा आधार है इसका नष्ट होना या इसे विस्मृत कर देना एक बड़े शून्य को पैदा करता है यह शून्य हमारे जीवन और पहचान के एक हिस्से को खोखला कर जाता है ।इस सत्य को कविता व्यक्त करती है-“अब नहीं लौटेगा वह पेड़/ बूढ़े दादा और दादी की तरह/अब हमारी स्मृतियों का/एक कोना सुना ही रहेगा/सदा के लिए....” (ज्योती चावला)

प्रकृति के प्रति रुझानों की बात करते हुए भी, यह रुझान एक फैशन या थोड़े समय के लिए अपनाए गए एक शौक तक ही सीमित रहता है मनुष्य प्राकृतिक सुषमा को देखने के लिए यात्रा योजनाएँ (टूर पैकेज)तय करता है ।इन यात्राओं के दौरान प्रकृति का आस्वादन करने की घोषणा करता है। परंतु प्रकृति का यह आस्वादन क्षणिक ही होता है। अतः कहा जा सकता है कि कुछ समय के आस्वादन के लिए ही मनुष्य प्रकृति से जुडता है यह जुडना संवेदनात्मक स्तर पर नहीं होता है। प्रकृति के सौंदर्य का भी उपभोग किया जाता है। यहाँ पर मनुष्य का प्रकृति के साथ कोई गहरा रिश्ता कायम नहीं होता। प्रकृति से प्राप्त वस्तुओं को भी यहाँ पर मनुष्य केवल अपने उपयोग के उत्कृष्ट साधन के रूप में स्वीकार कर पाता है। ‘पहाड से लौटते हुए’ शीर्षक कविता इस ओर संकेत करती है- “साथ नहीं ला पाए हम वह हवा/जो छू जाती थी मन/कहां साथ आए वह सौंधी गंध/बारिश में धुले पहाड़ी की मिट्टी की पेड़ों की” (रश्मी भरद्वाज)

पहाड़ घूमने गए यायावर उसकी सुषमा का आस्वादन करके लौटते हैं तो ढेरों तस्वीरें खींच लाते हैं। कैमरे में प्रकृति का संवेदनात्मक अंश खूबसूरती का चित्र बनकर ही साथ आ पाता है, चित्र में वह संवेदना नहीं होती जो

महसूस की जा सकती है। पहाड़ों से लाए गए का फल आड़ू और आलू बुखारे की खुशबू से घर के एक कोने का भर जाना भी क्षणिक ही होता है। उसके बाद मन के कोने में अपनेपन का एहसास लिए यह प्रकृति के पेड़ नदियाँ झरने कहीं शेष नहीं होते। आस्वादन के उपरांत भुला ही दिए जाते हैं ये। प्रकृति के प्रति वर्तमान मनुष्य में आया बेगानापन है,जो समकालीन स्त्री कविता यहाँ व्यक्त करती है।

प्रकृति को देखना वहाँ की संस्कृति और उसमें जीने वाले मनुष्य को देखना भी होता है। इस बात की ओर कविता इशारा करती है कि पहाड़ों पर जीने वाले मनुष्य और उनके तथा पहाड़ों के रिश्ते को देखे बिना पहाड़ को देखना अधूरा ही है। पहाड़ी लोगों को देखते हुए हम मनुष्य की प्राकृतिक क्षमताओं को देख पाने में सक्षम होते हैं। जो आधुनिक औद्योगिक सभ्यता के नाम पर वर्तमान तथाकथित शहरी सभ्य मनुष्य भुला चुका है । यायावर की आंखों ने पहाड़ों की सुषमा का आस्वादन किया, हाथों ने वहाँ की प्राकृतिक संपदा को बटोरा बावजूद इसके बहुत कुछ है जो रह गया, जो आधुनिक मनुष्य अपने साथ नहीं ले आ पाया- “नहीं बटोर पानी फिर भी मेहनतकश चेहरों की वह बेतरतीब रेखाएँ/हूनर हर हाल में जिए जाने का/पथरीले संकरे रास्तों से गुजर कर भी/खोजती रहती हैं जो मंजिलों का पता।” (रश्मि भारद्वाज)

कचनार पर कविता शिक्षक अपनी कविता में अलका सिन्हा बताती हैं कि आजकल प्रकृति के साथ होने वाले रागात्मक या संवेदनात्मक संबंधों को ही अप्राकृतिक मान लिया जाने लगा है। जीवन का व्याकरण इतना बदल गया है कि भीड़ में भागता आदमी पास परिवेश से कटा व्यक्ति आज स्वाभाविक माना जाने लगा है और अन्य व्यक्ति अस्वाभाविक माने जाने लगे हैं अलका सिन्हा कहती हैं कि उस कचनार के पेड़ पर कविता लिखना भी लोगों को आज अस्वाभाविक लगता है कि जो जो जीवन की रागात्मक आज से जुड़ा रहा है-“कितना अप्राकृतिक लगता है/आज के समय में/कचनार पर कविता लिखना”(अलका सिन्हा)

वर्तमान समय की विडंबनात्मक स्थिति को स्त्री कविता व्यक्त करती है लोगों के संबंधों प्रकृति के साथ संवेदनात्मक स्तर पर ना होकर के यांत्रिक रूप से हो चला है जो लोग प्रकृति को जानने का दावा करते हैं वह भी उसके संदर्भ में किताबी ज्ञान ही रखते हैं। विचित्र बात यह है कि जिस परिवेश में हम जी रहे हैं अपने आसपास की प्रकृति से मनुष्य बिल्कुल बेगाना होता चला जा रहा है।

‘कैसे पहचानो इस भीड़ में कचनार/जानती ही क्या हूँ मैं/इस खूबसूरत नाम के सिवा/चलो खोज भी लो शब्दकोश में अर्थ/देख भी लूंगी इंटरनेट पर चित्र” (अलका सिन्हा)

कविता बताती है कि प्रकृति के दोहन में हम लगे हुए हैं लेकिन प्रकृति को पहचानने की हमारी क्षमता समाप्त हो गई है।

हम अपने पास परिवेश की प्रकृति को ना तो जान पाते हैं ना पहचान पाते हैं। जहाँ मनुष्य और प्रकृति के बीच संवाद की स्थिति समाप्त हो जाने की सूचना मिलती है वही उसे आ पहुँचे खतरे भी हमें दिखाई देने लगते हैं प्रसिद्ध विचारक कार्ल मार्क्स ने प्रकृति को मनुष्य का आज एक शरीर माना है अगर मनुष्य अपने शरीर के साथ संवाद की स्थिति नहीं बनाए रख पाता तो वह अनंतर उसके प्राण के लिए खतरनाक हो सकता है। इसी सत्य को प्रकृति और मनुष्य के बीच के संवादात्मकता के संदर्भ में भी देखा जा सकता है। वर्तमान मनुष्य की मानसिकता लाभाधिष्ठित हो गई है ।इस लाभ हानि की मानसिकता के कारण प्रकृति में से अधिकाधिक दोहन के प्रति तो मनुष्य पूर्णताया सचेत रहता है, परंतु प्रकृति को जानने पहचानने की क्षमता उसमें विलुप्त होती चली जा रही है। यह संवादात्मक का ह्रास वस्तव में एक विडम्बनात्मक स्थिति को जन्म दे रही है।

“इस दोहन में इतना मशगूल है हम/कि देख नहीं पाती/हमारी आंखें/कि हमें देते देते कितना चुप गए हैं ये सब/इतने पर भी खत्म नहीं होते/यह जुनूनी मनसूबे/पर्वतों की चोटियाँ/सागर चांद सितारे/या आसमान पर/फतह शगल है हमारा।” (पूनम अग्रवाल)

दोहन की हद जब पार हो जाती है तब प्रकृति प्रकोप के रूप में प्रकृति अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करने लगती है पूनम अग्रवाल की यह कविता 'सुनामी' इसी संदर्भ को अभिव्यक्तिदेती है। यहाँ स्त्री कविता मनुष्य और प्रकृति के समीकरणों के बिगड़ने के खतरों को काव्यात्मक ढंग से इस प्रकार व्यक्तकरती है कि जब प्रकृति पर आधिपत्य और उसका दोहन मनुष्य का शगल हो जाएगा तब मानव राशि का नाश प्रकृति का भी शक्ल हो सकता है।

इसी सत्य को ‘धरती का आर्तनाद’ शीर्षक कविता

में शीला गुजराल विविध संदर्भों में अभिव्यक्तिदेती है। 'धरती का आर्तनाद' कविता में कवयित्री प्रदूषण की समस्या को उठाती हैं और इससे होने वाले नाश की ओर इशारा करती हैं और वर्तमान औद्योगिक सभ्यता के चलते अपनी स्वच्छ पारिस्थितिकी के विनाश की ओर इशारा करती हैं।

'मेरे तन को छलनी कर/लाखों पेड़ पौधों को उखाड़ देते/किसानों का रोजगार ही नहीं छीनते/शेष धारा की उर्वरता भी/जिन पेड़ों से गिरते धाराशाई सुखे पत्ते/कभी मेरा स्वास्थ्यवर्धक भोजन थे/अब रासायनिक खाद पर निर्भर मैं/बनती जा रही हूँ बंजर। (शीला गुजराल)

कविता अपने विस्तार में इस सत्य को बताती है कि अविकसित या अर्ध विकसित देशों में पहले भी आत्मनिर्भरता की मात्रा कम रही है। परंतु आज प्रकृति के नाश या उससे छीने जाने के कारण वह भी लगातार घटती जा रही है साधारण मनुष्य अपनी जरूरतों के लिए किस प्रकार एम. एन. सी. का मुँह ताकता है ,गरीब सरकार अपनी हरित संपदा और पानी एम. एन. सी. को बेचने के लिए मजबूर है और साथ ही साथ एम.एन.सी. से खरीदने या निर्भर रहने के लिए भी। कृषि संस्कृति के प्रति हाथ को भी चिंता के रूप में समकालीन स्त्री कविता अभिव्यक्त करती है निर्मला पुतुल की कविता उतनी दूर मत ब्याहना बाबा की पंक्तियां हैं- "उसके हाथों में ना देना मेरा हाथ/जिसके हाथों में कभी कोई पेड़ नहीं लगाए/फसलें नहीं उगाई जिन हाथों ने"

भारत एक कृषि प्रधान देश रहा है हमारी कृषि संस्कृति रही है। पर आज स्थिति यह है कि किसान यह चाहता है कि वह किसान न बना रहे और न ही अपनी आगे की पीढ़ी को खेती की ओर अग्रसर करना चाहता है। परिणाम स्वरूप हमें खाद्य सामग्री संबंधी बुनियादी जरूरतों के लिए बहुराष्ट्रीय कंपनियों पर आश्रित होना पड़ता है। इससे इतर आत्मनिर्भरता को महत्व देने वाली संस्कृति की प्रतिष्ठा का आह्वान स्त्री कविता करती है। इसमें स्त्री कहती है कि पेड़ न लगाने वाले ,फ़सल न उगाने वाले व्यक्तिके हाथों में मत देना मेरा हाथ। यहाँ ध्वनित होता है कि मेरा नाता उस संस्कृति से मत जोड़ना जो संस्कृति आत्मनिर्भर ना हो।

पितृसत्तात्मक समाज में स्त्री के लिए बहुत से प्रतिबंध लगाए जाते हैं। ये प्रतिबंध है कहीं खुले आम घोषित किए जाते हैं, कहीं अदृश्य दीवारों की तरह के चारों ओर बरकरार रहते हैं।असुरक्षा के नाम पर इन प्रतिबंधों के रहते हुए खुलकर प्रकृति में आना और प्रकृति के साथ तादात्म्य साबित कर पाना, स्त्री के लिए कभी सम्भव नहीं होता। जीवन को जीने कि एक लय होती है जिसमें खुली प्रकृति की लय सम्मिलित रहती है। जीवन और प्रकृति के संदर्भ में एक व्याकरण है और इस व्याकरण को स्त्री अपनी भाषा में अपनाना चाहती है। वह अपनी लय में प्रकृति के लायक को मिला देना चाहती है इसकी अभिव्यक्ति स्त्री कविता करती है- "उन विशाल सघन वृक्षों तक जाने दो मुझे/ झिनके पत्तों से फूटती मर्मर ध्वनि/हाँ सीधे मेरी आत्मा तक आ रही है।

ऐसे ही एक वृक्ष के तने से पीठ टिकाकर/कम से कम एक बार,भले ही वह ज़िन्दगीमें आखिरी बार हो, आपने मन का गीत गाना है मुझे/जिसकी कभी किसी ने फ़रमाइश न की हो।"   (कात्यायनी)

व्यवस्था की पाबन्दियों के रहते प्रकृति के इस रंग रूप रस गन्ध और उसके सहज संगीत का पूरा अस्वादन स्त्री को कभी भी करने नहीं दिया जाता। प्रकृति से खुलकर मिलने, उससे तादात्म्य साबित करने की तीव्र इच्छा भी स्त्री कविता व्यक्त करती है- "मुझे अपने लिए एक बार/ खुले आसमान के नीचे जाने दो/तारों से टपकती ओस सनी रोशनी में भीगने दो।"

स्त्री का व्यवहार क्षेत्र पहले की अपेक्षा विस्तृत होता है तो स्त्री लेखन के कैनवास का क्षेत्रफल भी उसी अनुपात में फैलता हुआ नजर आता है जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में स्त्री गतिरोधों को पार करके बढ़ती हुई दिखाई देती है स्त्रीपक्षीय चिंतन स्त्री को नागरिक के रूप में पहचान दिलाता है। तो वह एक नागरिक तथा संवेदनशील व्यक्तिके रूप में अपना परिचय देती है और अपने कर्तव्यों के प्रति सचेत होती है। हम देखते हैं कि स्त्री कविता प्रकृति एवं मनुष्य, प्रकृति एवं स्त्री के समीकरणों के संवेदनात्मक पक्षों को आर्द्रता के साथ छूती है वहीं अपने समय के आर्थिक सामाजिक राजनीतिक पहलुओं के साथ प्रकृति के सम्बन्धों के प्रति भी वह बोधवान होती है और अपने गहन चिंतन की प्रामाणिकता और प्रासंगिकता का परिचय देती है।

प्रोफ़ेसर
श्री शंकराचार्य संस्कृत विश्वविद्यालय
कालडी-683574

गोविंद मिश्र के उपन्यास 'हवा में चिराग' में प्रकृति और विश्व विभीषिका

श्वाती पाण्डेय

प्रकृति और मानव का सम्बन्ध उतना ही पुराना है, जितना कि सृष्टि के उद्‌भव और विकास का इतिहास प्राचीन है। प्रकृति-माँ की गोद में ही प्रथम मानव शिशु ने आँखें खोली थीं, उसी की क्रोड़ में खेलकर वह बड़ा हुआ और अन्त में उसी के आलिंगन में आबद्ध होकर वह चिर-निद्रा में सोता रहा। प्रकृति के अद्‌भुत क्रियाकलापों से उसकी हृदयस्थ भावनाओं-भय, विस्मय, प्रेम आदि का स्फुरण हुआ, उसी की नियमितता को देखकर उसके मस्तिष्क में ज्ञान-विज्ञान की बुद्धि का विकास हुआ। दार्शनिक दृष्टि से भी प्रकृति और मानव का संबंध स्थायी है, चिरन्तन है। सत् रूपी प्रकृति, चित्‌रूपी जीव और आनन्द रूपी परमतत्व तीनों ही मिलकर सच्चिदानन्द परमेश्वर की सत्ता का रूप धारण करते हैं। शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक, तीनों ही दृष्टियों से प्रकृति मानव का पोषण करती हुई उसे जीवन में आगे बढ़ाती है।

मानव और प्रकृति के इस अटूट सम्बन्ध की अभिव्यक्तिधर्म, दर्शन, साहित्य और कला में चिरकाल से होती रही है। साहित्य मानव का प्रतिबिम्ब है, अतः उस प्रतिबिम्ब में उसकी सहचरी प्रकृति का प्रतिबिम्बित होना स्वाभाविक है।

पृथ्वी पर मनुष्य और दूसरे प्राणियों का जीवन एक विस्तृत प्राकृतिक पर्यावरण में आकार लेता और पनपता है। खासकर मनुष्य अपने प्राकृतिक पर्यावरण से ज्यादा प्रभावित होता है और बदले में उसे ज्यादा प्रभावित करता है। वास्तव में औद्योगिक क्रांति के बाद ही प्राकृतिक संपदा के व्यापक दोहन और शहरीकरण ने पर्यावरणीय संकट पैदा करना शुरू कर दिया था, जो आज उत्तर - औद्योगिक समाज में चरम पर है। खासकर 70 के दशक से यह चेतावनी दी जाने लगी थी कि प्राकृतिक संसाधनों का दोहन और मानवीय लापरवाहियाँ इसी तरह जारी रहीं तो सौ सालों के भीतर मानव अस्तित्व खतरे में पड़ जाएगा।

मनुष्य प्राचीनकाल में प्राकृतिक पर्यावरण का एक ज्यादा प्रत्यक्ष अंग था। उसके जीवन की बुनियादी जरूरतें प्रकृति से पूरी होती थीं। वनों की बहुलता थी। नदियाँ जल से भरी रहती थीं। पहाड़ वनस्पतियों और बर्फ से आच्छादित थे। प्रकृति अधिक हरी-भरी, स्वच्छ और सौंदर्यपूर्ण थी। एक बात यह भी है कि मनुष्य की आबादी कम थी। सभ्यता के विकास में वनों का प्रौद्योगिकी विकास और ह्रास होता गया। इसका नतीजा यह निकला कि जलवायु परिवर्तन, जल प्रदूषण, वायु प्रदूषण जैसी गंभीर समस्याएँ पैदा हो गई। इनमें धीरे-धीरे नई समस्याएँ और जुड़ती गईं, इन्हीं में से एक इक्कीसवीं सदी के पूर्वार्द्ध में सन् 2019 में सम्पूर्ण विश्व को अपने आगोश में लेकर सम्पूर्ण मानव जाति के जीवन को संकट में डालने वाली कोरोना महामारी का प्रादुर्भाव हुआ। गोविन्द मिश्र जी ने अपने उपन्यास हवा में चिराग़ में मुनष्य के द्वारा प्रकृति से छेड़छाड़ के फलस्वरूप उत्पन्न इसी कोरोना महामारी की विभीषिका का ज्वलंत चित्रण किया है। वे लिखते हैं - "दुनिया में कुछ भी अच्छा नहीं हो रहा....तरक्की, विकास के नाम पर आदमी प्रकृति को ही नष्ट करने में लगा हैं- स्मार्ट सिटी, मैट्रो के लिए अनाप-शनाप पेड़ काटे जा रहे हैं, नदियाँ गंदी की जा रही हैं, खाने की चीजों में जहर मिला होता है...सब्जी-फलों में केमीकल्स, दूध में यूरिया। पृथ्वी पर लोग दर्दो मचाये हैं, उससे नहीं अघाते तो चाँद, मंगल की तरफ दौड़ते हैं। वहाँ भी यही तो करेंगे जो पृथ्वी पर कर रहे हैं। चौबीसों घंटे आसमान में हवाई जहाज धुँआ उगलते इधर से उधर होते हैं....उससे उपर के आसमान में इस देश या उस देश से छोड़े गये कितने यान चक्कर काट रहे हैं.....वातावरण में कितनी गर्मी है....दिल्ली जैसे शहरों में

साँस लेने को साफ हवा नहीं उसे गैस-चैम्बर कहा ही जाने लगा हैं.....दूसरे शहर भी धीरे-धीरे उसी रास्ते जा रहे हैं...."[1]

मनुष्य की इन्हीं गतिविधियों के कारण सारी पृथ्वी कराह रही हैं। मनुष्य, जीव-जन्तु, पेड़-पौधे, पृथ्वी पर रहने वाले सभी प्राणी अपने को असुरक्षित महसूस कर रहे हैं। मनुष्य की जीने की लालसा समाप्त होती जा रही हैं। आधुनिक जनजीवन उसे पसंद नहीं आ रहा हैं। भारतीय परिप्रेक्ष्य में भारतीय संस्कृति से जुड़े संस्कार दूषित होते चले जा रहे हैं। शादी ब्याह में फिजूलखर्ची, फूहड़पन्ती, होटलों में बेकार का जमावड़ा, फोटोबाजी, शोर-शराबा बढ़ता चला जा रहा हैं। मनुष्य आधुनिक संचार उपकरणों का गुलाम होता जा रहा हैं। मोबाईल के बिना वह अपने आप को अधूरा महसूस करता है। मोबाईल से ही वह सभी जानकारियाँ प्राप्त कर बुद्धिमान बनना चाहता है। टेक्नोलॉजी और मशीनों के विस्तार से बेरोजगारी बढ़ती जा रही है। धरती प्रदूषित होती चली जा रही है। इसी के परिणामस्वरू प कोरोना महामारी उत्पन्न होती है। गोविन्द मिश्र जी इस विषय में लिखते है - "चीन के वान वुहान में कोरोना वायरस खामोशी से प्रकट हुआ। उसे वहाँ दबाने-छिपाने की कोशिश की गई, लेकिन वह तेजी से चीन के बाहर फैला...फैलता चला गया... इटली, स्पेन, योरूप, अमेरिका... करीब-करीब पूरे विश्व को अपने चपेट में लेता हुआ तेहरान पहुँचा, भारत भी आ गया...जैसे बिजली गिरी एक जगह, पर तनतनाती हुई लहरियों में इधर-उधर फैलती चली गई। कुछ अन्दाज़ा नहीं-किस चीज़ से फैलता है। इतना ही पता लगा है कि यह छूत की बीमारी की तरह फैलता है...संक्रमण हवा से नहीं, आदमी से आदमी को लगता है। सीधा फेफड़ों पर वार करता है, फेफड़ों को सिकोड़ कर रख देता है, थोड़े ही समय में आदमी की ज़िन्दगी खत्म। कोई दवा नहीं, कब थमेगा...पता नहीं। दूसरे देशों के अनुभव से भारत ने भी उन्हीं लोगों का तरीका अपनाया - लॉकडाउन (शहर की गतिविधियाँ बन्द), मास्क (नाक-मुँह ढँककर रखना), सोशल डिस्टैंसिग (मनुष्य से दूरी बनाये रखना)। अपने घरों में बन्द रहो, बाहर निकलों तो मास्क लगाये हुए, किसी से बात करो तो कम से कम एक मीटर की दूरी पर खड़े हों।"[2]

इस प्रकार पूरे विश्व में भीषण विभीषिका फैल जाती है। लोगों का पूरा जीवन अवरूद्ध हो जाता हैं। पूरे देश में कर्फ्यू लग जाता हैं। रेल, बसे, हवाई-जहाज, स्कूल-कॉलेज, होटल, सिनेमाघर, माल, बाजार, धार्मिक-सांस्कृतिक कार्यक्रम, आंदोलन आदि सभी बंद हो जाते हैं। जो मनुष्य जहाँ रहता है उसे वहीं कैद होकर जीवन व्यतीत करने के लिए विवश होना पड़ता है। ऐसी परिस्थिति मनुष्य के द्वारा प्रकृति पर किये गये अत्याचारों के कारण उत्पन्न होती है। मनुष्य का मानसिक सन्तुलन बिगड़ने लगता है और वह अवसादग्रस्त होने लगता हैं। उसे अपने भविष्य की कोई आशा नजर नहीं आती। जीवन से वह पूर्णतया निराश हो जाता है। ऐसी परिस्थिति में फँसे हुए मनुष्य को उपन्यास के प्रमुख पात्र उत्पल जी जयशंकर प्रसाद जी की कामायनी महाकाव्य से प्रेरणा लेने की सलाह देते हैं। इस कोरोना महामारी की तुलना वे जलप्रलय से करते हैं - "हिमगिरी के उत्तुंग शिखर पर, बैठ शिला की शीतल छांह एक पुरुष भीगे नयनों से देख रहा था प्रलय-प्रवाह।" प्रलय-प्रवाह ही तो है यह कोरोना ।जैसे देवताओं के अभिमान और विलासिता के कारण प्रलय आया, वैसे ही आधुनिक सभ्यता में बुद्धि का अंहकार, विलासिता से लिपटी हमारी जीवन शैली, प्रकृति पर अत्याचार, उसका अनाप-शनाप दोहन... तो अब प्रकृति ने भी उठकर एक झापड़ मारा है... कि लो...बड़े-बड़े आविष्कारों, चाँद-मंगल तक पहुँचने का घमण्ड करने वालों...तुम एक वायरस को ही नहीं ढूँढ़ सकोगे...वह कहाँ छिपा बैठा है, किस पर कब, कैसे झपट्टा मारता है....उसकी दवा ढूँढ़ते रह जाओगे। कैसे कोरोना के एक झटके ने ही आज के आदमी की जीवन शैली....कार्य-शैली ही बदलकर रख दी है...."[3]।

इस कोरोना महामारी के कारण लोगों का आना-जाना मिलना-जुलना बन्द हो गया। जिससे उनका स्वभाव भी बदलता चला जा रहा है। मनुष्य स्वार्थी होता चला जा रहा है। सोशल डिस्टेंसिंग उसकी सामाजिकता को नष्ट करती जा रही है। वह पशुओं की तरह अपना जीवन व्यतीत कर रहा है। मनुष्य समझता है कि वह इस कोरोना महामारी की भी कोई वैक्सीन टीका या दवा इजात कर लेगा और भविष्य में यह महामारी उसके काबू में आ जायेगी। लेकिन

यह उसका अपनी बुद्धि पर किया जाने वाला अंहकार है। क्योंकि यदि कोरोना समाप्त भी हो जायेगा तो उसके पश्चात मनुष्य की विनाशकारी प्रवृत्तियों के कारण कोरोना से भी बड़ी महामारी जन्म लेगी। इस कोरोना महामारी ने वैसे ही मानवता की भावना को नष्ट कर दिया है। मनुष्य पैसे के पीछे भाग रहा है। सड़क पर अधमरे पड़े हुए व्यक्ति की जेब से रूपये निकाल ले रहा है। सरकारी कर्मचारी लॉकडाउन की सख्ती का फायदा रिश्वत खाने लगे हैं।

"मेरा क्या...मेरे जीवन का जो होना था...वह तो हो चुका। आज नहीं कल जाना ही है। किसी बीमारी से अस्पताल में घुट-घुटकर कर जाने से बेहतर ही होगा यह-फटाक से। प्रकृति पर आदमी जो अत्याचार करता रहा है, अब भी कर रहा है तो उसे प्रकृति का प्रकोप कभी न कभी झेलना पड़ेगा - यह मैं शुरू से ही लिखता आ रहा हूँ...तो कोरोना से अचम्भित या भयभीत नहीं हूँ। पीड़ा जो दुनिया पीछे छोड़ जाऊँगा...उसे लेकर है-बच्चे स्कूल का प्लेग्राउण्ड नहीं देख सकेंगे, कार्यालय वीडियो कान्फ्रेंसिंग, मोबाईल से चलेंगे...लड़के-लड़कियों का यौवन पतझड़ जैसा होगा, लोगों को एक दूसरे की तकलीफ में खड़े होने का मौका नहीं होगा तो वे अजीब स्वार्थी हो जायेंगे... सोशल डिस्टेंसिंग आदमी की सामाजिकता को ही सोख डालेगी...फिर तो हम पशुओं की तरह जी रहे हैं...और क्या!"[4]

इन परिस्थितियों में मनुष्य के सामने उपन्यासकार कामायनी के आशा सर्ग से प्रेरणा लेने की बात करता है। उपन्यास का प्रमुख पात्र साहित्यकार उत्पल जी ने अपनी जो आत्मकथा लिखी है उसके अन्तिम अध्याय में उन्होंने कोरोना के विषय में लिखा है। उन्होंने इसमें वर्तमान वातावरण में व्याप्त कोरोना के कारण उत्पन्न परिस्थिति का चित्रण किया है।

"अरे भाई अच्छी खबर है.... हुलफुलाते हुए वे कह रहे थे - मेरी आत्मकथा पूरी हो गई। उसके अन्तिम अध्याय में कोरोना है...जिसे हम-तुम जी रहे हैं...लेकिन ताज्जुब की बात कि जो निराशा इस समय वातावरण में व्याप्त है, मुझमें है...पूरे अन्तिम अध्याय में उतरी है...उससे अन्त नहीं हुआ आत्मकथा का। महाकवि बचा ले गये... कामायनी जो मैं पिछले दिनों पढ़ता रहा था न...उससे अन्त हुआ। आत्मकथा का अन्तिम पैरा कहो तो सुनाउँ तुम्हें....मेरे सामने है...छोटा ही है...सुनो -

नैराश्य में डूबा चला जा रहा था कि 'कामायनी' के दूसरे सर्ग 'आशा' का यह पद सामने लहराया - "यह क्या मधुर स्वप्न सी झिलमिल, सदय हृदय में अधिक अधीर। / व्याकुलता सी व्यक्तहो रही आशा बनकर प्राण समीर।।" और वह एक काया में रूपान्तरित होता चला गया। झिलमिल तो मुझसे मुलाकात के पहले उसने मेरा उपन्यास झिलमिल पढ़ा था। व्याकुलता-सी.... तो एक रोज़ सचमुच मैं बहुत व्याकुल था....बहुत कुछ कहना चाहता था, यही पता नहीं कि क्या कहना चाहता हूँ और किससे। अपनी परेशानी उसे बतायी कि मैं, एक लेखक, लिखकर क्यों नहीं ढूँढ़ सकता कि क्या कहना चाहता हूँ....और किससे? तो इसकी क्या ज़रू रत...कागज है न! लानत मेरे इतने वर्षों-वर्षों के लेखकीय अनुभव को.... उसने कहा - 'नहीं, मनुष्य तो चाहिए' उससे परिचय साहित्य के माध्यम से हुआ था....और कामायनी से यह रूपान्तरण.....साहित्य की पर्तों में अवगुण्ठित वह...आशा। कोरोना के 'प्रलय-प्रवाह' के बाद जो जीवन आयेगा, वह अच्छा ही होगा...यह आशा। उन्होंने समाप्त किया और इधर स्नेहा के मुँह से निकल गया... बहुत सुन्दर है ।

"और देखों" - वे कह रहे थे - "महाकवि के इस पद में कैसे हम-तुम दोनों साथ आ बैठे हैं.... मधुर स्वप्न सी झिलमिल.....माने तुम, सदय हृदय....माने मैं, मेरे हृदय में करू णा तो है। आगे - व्याकुलता सी व्यक्त हो रही.... यहाँ फिर मैं, मेरे एकालाप और अन्त में आशा बनकर ..... माने तुम।"[5]

उपन्यासकार गोविन्द मिश्र की सबसे बड़ी देन है विश्वव्यापी जीवन विभीषिका के बीच उज्ज्वल नवमानवता की मंगल आशा। उज्ज्वल वह है जो तमस से मुक्तहैं साथ ही चेतन और चैत्य पुरुष की सद्वृत्तियों से युक्तहै। नव वह है जो मनुष्य जाति के बर्बर संस्कारों से मुक्तहो गया है। मनुष्य ने भौतिक बुद्धि द्वारा बड़े-बड़े वैज्ञानिक चमत्कार दिखाये हैं। लेकिन भौतिक विकास उसे निरन्तर संघर्ष की

ओर प्रेरित करता जा रहा है जिससे वह अपने अभीष्ट अर्थात आनन्द से अनजाने और अनचाहे वंचित होता जा रहा है। जिसे वरदान माने बैठा था वह अभिशाप हो गया। आज से कोई छह दशक पूर्व जब इस देश में वैज्ञानिक बोध अपनी चकाचौंध के साथ प्रविष्ट हुआ था उसका विरोध करते हुए गोविन्द मिश्र जी लिखते हैं- "दिक्कत दरअसल मेरे भीतर बैठे इस टेढ़े-मेढ़े आदमी से हैं। साहित्यकार है....पर दूसरे लेखक इसे साहित्यकार नहीं लगते, क्योंकि उनकी वरीयताओं में सबसे उपर साहित्य-लेखन नहीं होता, जैसा कि यह सोचता है, इसके यहाँ है। अरे भाई साहित्य क्या रोजी-रोटी देता है? और यह ए.सी., कार में ए.सी., घर में ए.सी., दफ्तर में ए.सी., आदमी जैसे ए.सी. के बक्से में चल रहा है....वातावरण में उतनी ही मात्रा में ये ए.सी. गरमी छोड़ते हैं....ग्लोबल वार्मिंग....ओजोन की पर्त में छेद हो गया है, समुद्र का स्तर कुछ वर्षों में तीन फीट उपर हो जायेगा, दुनिया के कितने तटवर्ती शहर डूब जायेंगे....आने वाला विनाश लोगों को दिखाई नहीं देता....प्रकृति चुप तो नहीं बैठेगी।"[6]

इस प्रकार गोविन्द मिश्र जी ने औद्योगिकीकरण एवं यांत्रिकता के विरूद्ध खड़े होकर प्रदूषण और शोषण की विभीषिका से त्रस्त होकर वर्तमान विश्व को आध्यात्म की प्रेरणा दी है। वे संवेदना को ही सबसे बड़ी भावनिधि मानते हैं। इस छोटे से जीवन में यदि मनुष्य, मनुष्य को प्यार नहीं करता तो वह क्यों उत्पन्न हुआ है। गोविन्द मिश्र जी क्षणिक सुखों के लिए हिंसा, कलह और अन्त:संघर्ष को पसन्द नहीं करते। मानवीय संबंध सर्वोपरि होते हैं। मनुष्य में कर्तव्य और भावना का द्वन्द्व होता रहता हैं। उनके पात्र दोनों की पूर्ति करते हैं या फिर कर्तव्य कर्म को त्यागकर परे हो जाते हैं। इसलिए कि भावना की बलि वे नहीं दे सकते। चाहे उत्पल हो चाहे स्नेहा, कंचन हो या भरत ये सभी संवेदनशील पात्र गोविन्द मिश्र के ही प्रतिरूप है। कोरोना महामारी की विभीषिका और उसके परिणामस्वरूप मानवीय संवेदना के ह्रास को लक्षित करते हुए वे लिखते हैं - "लॉकडाउन को तीन माह तक खींचा गया था, हालात फिर भी नहीं सुधरे। उल्टे संक्रमण...और मौतों की संख्या बढ़ती जा रही थी। नयी समस्याएँ सिर उठाने लगीं...जैसे मजदूरों और दैनिक कमाई पर निर्भर लोगों का अपने गाँवों की तरफ पलायन, उनके लिए काम की समस्या, अस्पतालों की सीमित होती चली जाती सुविधाएँ, स्थानीय वे लोग जो अपने जीवन यापन भर के लिए वहीं कमाई कर लेते थे - बाईयाँ वगैरह - उनकी आसन्न भुखमरी। उधर चाहे जितने आदेश निकाल दो, मोबाईल पर समझाइश पर समझाइश दो - मास्क, डिस्टेंसिंग आदि के बारे में - हिन्दुस्तानी आदमी तो अपने ढंग से चलेगा, वे लोग भी जिनकी तरफ से आदेश निकलते हैं - कहीं मंत्री परिषद् का विस्तार हुआ तो नये मंत्री एक-दूसरे के हाथ से हाथ बाँधे, चेन बनाकर, फोटो खिंचा रहे हैं, अपने शहर में मंत्री होने पर भव्य स्वागत होना है... जनाधार दिखाना है तो भीड़ होगा ही। प्रान्त में जो उपचुनाव हैं...उनकी तैयारी करना है। दूसरे प्रान्त में जो सरकार अल्पसंख्यक है उसे गिराने की कवायद करना है, किसी को मुख्यमंत्री बनने की अपनी महत्वाकांक्षा पूरी करनी है और इधर हमारा साधारण आदमी....लॉकडाउन में लोगों की सुविधा के लिए सशर्त जो बाजार खुले तो ठस्सम-ठस्सा, राशन लेने में मारा-मारी। सड़कों पर इडली सांभर के ठेलों पर इक्ट्ठा नाश्ता करते, हँसी-ठ्ठा करते लोगों के जमावड़े। असल बात कि लोगों के काम-धन्धे चौपट हो गये थे, केन्द्र और प्रान्तीय सरकारों की आर्थिक स्थिति गिरती जा रही थी। लॉकडाउन चलाते रहने से कोरोना तो काबू में आ नहीं रहा...उल्टे भुखमारी की महामारी सामने खड़ी थी।"[7]

गोविन्द मिश्र जी के अनुसार कोरोना के कारण अपराधों की बाढ़ आ जाती है।। आपाधापी होने लगती है और जनता त्राहि-त्राहि करने लगती हैं। इसका कारण मनुष्य का उपयोगितावादी और रेशनल हो जाना हैं। मस्तिष्क और हृदय के असामंजस्य से दुख-द्वन्द्व उत्पन्न होते हैं। बुद्धि के प्रबल हो जाने से भाव तत्व अथवा मानवीय संवेदना दब जाता है। अति बौद्धिकता अहं को बढ़ावा देती हैं और मनुष्य को स्वार्थ केन्द्रित बना देती हैं। ममत्व, मोह, अराजकता, अत्याचार आदि इसी स्वार्थ की स्वाभाविक परिणति है। अंहकार वश मनुष्य कोरोना के विरुद्ध संघर्ष करता है और आहत होता है। वह बुद्धि चक्र के सहारे निर्मम-निष्ठुर उपाय लेकर चलता है परन्तु समस्याओं के

समाधान में सक्षम नहीं दिखता। ज्ञान में एक ओर तो विशेषज्ञता पर जोर दिया जाता है और दूसरी ओर बाह्य प्रदर्शन या पाखण्ड पर। इसीलिए कोरोना मानव सभ्यता को अभिशाप साबित होता है। गोविन्द मिश्र जी लिखते हैं - "अनलॉक में भी नये संक्रमितों और मौतों की संख्या बढ़ती ही जा रही थी। माना जाने लगा था कि लॉकडाउन करों या अनलॉक...कोरोना वायरस अपनी रफ्तार से चलता है, बढ़ता है, पीक पर पहुँचता है, फिर धीरे-धीरे उतरता है। एक शहर छोड़कर दूसरे में चला जाता है। पहले लोगों का ख्याल था कि उसके शिकार महानगर ज्यादा हैं, क्योंकि वहाँ अन्तर्राष्ट्रीय हवाई अड्डे हैं.....लेकिन अब यह छोटे शहरों, गाँवों में भी फैल रहा है। अनलॉक किया गया कि देश की आर्थिक स्थिति सँभले, लोग अपने काम करें, गरीब अपनी रोटी लायक कमा सकें.....लेकिन वह भी कहाँ हो पा रहा है। बाहर काम पर जाने की छूट है, लेकिन लोग डरे हुए हैं, घरों में बन्द रहते हैं।"[8]

अपने अंहकार से अतिक्रांत मनुष्य प्रकृति का संदेश नहीं ग्रहण कर पाता हैं। बल्कि अंहकारी चिकित्सकों के नेतृत्व में वैक्सीन आदि इजाद करने में प्रवृत्त हो जाता है। कर्तव्य का दंभ मनुष्य को विपथित कर देता है और वह उत्पात करने लगता है। उसकी अंहकार भावना से क्षुब्ध होकर प्रकृति कोप करती है जिससे कोरोना महामारी से जन विपलय होता है जिसके कारण मनुष्य का अहंकार ध्वस्त हो जाता है और निर्वेद, कुंठा या निवृत्ति का भाव उसमें भर जाता हैं। यूरोप और अमेरिका के जनजीवन में जो कुंठा भर गयी जिससे वहाँ की युवा पीढ़ी अवसाद ग्रस्त हो गयी वह इसी भौतिकवाद और कर्मवाद की सहज प्रतिक्रिया है। गोविन्द मिश्र जी ने वर्षो पूर्व इस स्थिति का पूर्वाभास कर लिया था। अत्यधिक कर्मवाद के खतरों को उन्होंने लक्ष्य कर लिया था। वे मानते हैं कि वर्तमान जीवन की अभानुषिकता का कारण हैं मनुष्य की संघर्ष वृत्ति अर्थात् दम्भ प्रेरित अतिचारी क्रिया-कर्म। उन्होंने हवा में चिराग़ उपन्यास में कोरोना के कारण निरन्तर भयावह होती जा रही स्थिति का चित्रण इस प्रकार किया है -"अनलॉक -5। सिनेमाघर, थियेटर....अपनी कुल सीटों में से आधी भर सकते हैं, रेस्तरां-होटल खुलेंगे, स्कूल-कॉलेजों के बारे में राज्य सरकारें तय करेंगी, समारोहों में अब सौ से थोड़ा ज्यादा भी हो सकते हैं....और भी कई ढीलें दी गई हैं, जबकि रोज-ब-रोज कोरोना से संक्रमितों की संख्या में कमी नहीं आई हैं। हाँ, ज्यादा लोग ठीक होने लगे हैं। सरकारों ने यह मान लिया है कि मरते हैं बीमार, बुजुर्ग, कमजोर ही, वे मरते रहेंगे, उन्हें मर ही जाना चाहिए! सरकारें अपनी आर्थिक स्थिति क्यों खराब होने दें...तो सब खोलते चले जाओ...क्रमशः। सिर्फ तीन चीजें करने की समझाइश देते रहो - मास्क, फासला, हाथ बार-बार धोना। लोगों में भी पिछले दिनों की बन्दिशें फाड़कर बाहर आने के लिए बेताबी है...उनके काम-धन्धे बैठ गये हैं, उन्हें उठाना है।"[9]

इस प्रकार हम देखते हैं कि गोविन्द मिश्र जी अपने 'हवा में चिराग़' उपन्यास में कोरोना से उत्पन्न विश्व विभीषिका का मार्मिक चित्रण किया है। उनका निष्कर्ष है कि सुख अपने संतोष के लिए संग्रह-मूल नहीं हैं। एकांगी सुख भोगवाद की सृष्टि करता है वे प्रकृति को भोग की वस्तु नहीं मानते हैं ऐसा करने पर ही कोरोना जैसी महामारी जन्म लेती है। इसके स्थान पर गोविन्द मिश्र जी विश्व मैत्री लोक, करुणा और समस्त चेतना के उद्गाता है। उन्होंने भोगवाद की जगह प्राणोन्नमुखी रसिकता और उज्ज्वल सौन्दर्य चेतना को वाणी दी है। यह भोगवाद मानवीय विपत्तियों का मूल उपादान है। इसीलिए उन्होंने अपने उपन्यास 'हवा में चिराग' में पाश्विक उपभोक्ता संस्कृति का भरसक परिहार करने का सुझाव दिया है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. हवा में चिराग - गोविन्द मिश्र - अमन प्रकाशन, कानपुर प्र.सं. 2021, पृ0 14
2. उपरोक्त - पृ. 17-18
3. उपरोक्त - पृ. 42
4. उपरोक्त - पृ. 42-43
5. उपरोक्त - पृ. 46-46
6. उपरोक्त - पृ. 14
7. उपरोक्त - पृ. 52
8. उपरोक्त - पृ. 68
9. उपरोक्त - पृ. 136

शोधार्थी, शम्भु दयाल स्नातकोत्तर महाविद्यालय
गाजियाबाद, उत्तर प्रदेश

ट्रांसजेंडर जीवन की त्रासदी : फिल्म 'शबनम मौसी' के संदर्भ में

नेहा जॉनी

समाज और सरकार ने हमेशा तृतीय लिंगियों को नजर अंदाज़ किया है। समाज में अपने अस्तित्व को खोजने और लोगों द्वारा अपनाए जाने के लिए आज भी वे संघर्षरत हैं। साहित्य और सिनेमा जैसे माध्यमों के जरिए ट्रांसजेंडर जीवन की मानसिकता एवं जीवन संघर्ष को दुनिया के सामने रखा गया है। ट्रांसजेंडर जीवन पर आधारित ऐसी फिल्में असल में उनके वास्तविक जीवन के अनुभवों और चुनौतियों का खुलासा करने वाला एक शक्तिशाली उपकरण हैं। ट्रांसजेंडर समूह के प्रति समाज की इस नापसंदी और नकारात्मक दृष्टि का एक कारण तो पहले की फिल्में ही है । आरंभिक दशक की फिल्मों में ट्रांसजेंडर लोगों को अमानवीय, उपहास पात्र और बहुत निछले तपके के गिरे हुए लोगों की तरह चित्रित किया गया है। अतः लोगों के मन में ट्रांसजेंडरों के प्रति एक नकारात्मक दृष्टि सी पैदा हो गई। लेकिन धीरे-धीरे फिल्म और लोगों की सोच में बदलाव आने के फलस्वरूप फिल्मों में इनकी समस्याओं और दुखद जीवन के बारे में बताते हुए इन्हें सकारात्मक रूप से दर्शाने लगे। इसमें ज्यादा फिल्में हिन्दी की है। ऐसी ही एक फिल्म है 'शबनम मौसी' जो 2005 में रिलीज़ हुई थी। इस फिल्म का निर्देशन योगेश भारद्वाज ने किया था। यह फिल्म शबनम मौसी बानो की जीवनी पर आधारित फिल्म है जो भारतीय राजनीतिज्ञ और ट्रांसजेंडर कार्यकर्ता है। वह भारत की पहली ट्रांसजेंडर विधायक (एम एल ए) थी जो सन् 1998-2003 तक मध्यप्रदेश राज्य के सुहागपुर विधानमंडल की निर्वाचित सदस्य रहीं। यह फिल्म "शबनम मौसी समाज में होने वाले अन्याय, ट्रांसजेंडर के प्रति लोगों की मानसिकता, राजनीतिक चाल पर खुला व्यंग्य हैं।"[1] इस फिल्म में शबनम मौसी की भूमिका आशुतोष राणा ने निभाई है। फिल्म में शबनम जी के जन्म से लेकर चुनाव तक की कहानी के माध्यम से ट्रांसजेंडर जीवन की त्रासदी एवं समस्याओं पर प्रकाश डाला गया है।

शबनम का जन्म मुंबई के एक बहुत अच्छे परिवार में हुआ था। शबनम के पिता पुलिस अधीक्षक थे और माँ भी पढ़ी लिखी थी। शबनम के जन्म के बाद कुछ किन्नर बधाई देने घर आये थे बच्ची को देखने पर ही वे समझ जाते है कि यह बच्ची उन्हीं की तरह है। इसलिए वे शबनम को जबरदस्ती अपने साथ ले जाते हैं। जब शबनम के पिता उन्हें रोकने की कोशिश करते है तो वे कहते हैं "अरे साब हिजड़े का पालना बहुत मुश्किल होता है ... आपकी बिरादरी और समाज में कोई इज़्जत नहीं रहेगी, सब यह बोलेंगे हिजड़े का बाप है।"[2] लोकलाज के भय के कारण शबनम के पिता उन्हें नहीं रोकते। वे बच्ची को अपनी बिरादरी में ले जाते हैं और वहाँ ट्रांसजेंडर हलीमा बच्ची का नाम शबनम रखती है और उसका पालन पोषण करती है। उस बिरादरी में शबनम का बहुत अच्छे से परवरिश हुई। उसे पढ़ाया-लिखाया गया साथ ही संगीत, नृत्य जैसी कलाओं की दीक्षा भी दी गयी। शबनम के स्कूल जाने की उम्र में जब वह स्कूल जाती है तो वहाँ उसे हिजड़ा कहकर चिढ़ाया जाता है और स्कूल से निकाल दिया जाता है। जब नौकरी ढूँढने जाती है तो यहीं सुनने को मिलता है कि "कभी हिजड़े को किसी ऑफिस में काम करते हुए देखा है। ......अब हिजड़े भी काम माँगने के लिए चले आते हैं ... कभी अगड़े को दो कभी पिछड़े को दो अब हिजड़े को भी दो।"[3] ट्रांसजेंडर अन्नु श्री गौरी का कहना है कि "हमें भी भारत के समान नागरिकों की भाँति क्यों नहीं समझा जाता है। क्या हमारी कोई इज्ज़त नहीं है? जब लंगड़े, अंधे, गूंगे, भीख माँगते हैं तो लोग उन्हें भीख देते हैं। वहीं जब एक हिजड़ा भीख माँगता है तो लोग गाली देते हुए कहते हैं कि साले तुम्हें कोई काम-धाम नहीं है। हम लोग समाज में काम करेंगे पहले आप काम देना तो शुरू करिए, हमें स्वीकार करना तो शुरू करिए।"[4] इस तरह से ट्रांसजेंडर के शिक्षित होने और नौकरी करने के अधिकार में समाज ने हमेशा रोक डाला है। इसलिए न चाहकर भी कुछ ट्रांसजेंडर व्यक्तियों को बाकी ट्रांसजेंडर लोगों के समान अपने परंपरागत पेशे जैसे नेक माँगने और बधाई देने के लिए मज़बूरन जाना पड़ता है।

ट्रांसजेंडर लोगों को अपनी बिरादरी से बाहर किसी

ओर को चाहना या प्रेम करने का भी हक नहीं है क्योंकि समाज को यह स्वीकार नहीं है। शबनम से इश्क कर बैठे इकबाल को न चाहकर भी अंत में मुकरना पड़ा इसलिए कि वह एक ट्रांसजेंडर है। शबनम का एक ट्रांसजेंडर होना इकबाल के लिए एक समस्या नहीं था बल्कि उसके परिवार वाले और समाज इसके खिलाफ थे। इकबाल की बहन शबनम से कहती है कि "आपको दुनिया के लिए पैदा किया गया है, दुनियादारी के लिए नहीं। जब खुदा ने आपको मर्द और औरत का नाम नहीं दिया तो आप जो है वही बनी रहिए आधी-अधूरी।"[5] कहानी जैसे आगे बढ़ती है फिल्म में ट्रांसजेंडर बिरादरी की कई समस्याओं पर भी प्रकाश डाला गया है जैसे ट्रांसजेंडर गुरु और अन्य ट्रांसजेंडर लोगों के बीच नेक मिले पैसों के लिए आपस में वाद-विवाद होना और अपने परंपरागत पेशे से उबकर पैसे की लोभ में ट्रांसजेंडर द्वारा वेश्यावृत्ति जैसे कारोबार के गलत मार्ग पर जाना आदि समस्याओं का भी ज़िक्र मिलता है। ट्रांसजेंडर लोगों का इस प्रकार वेश्यावृत्ति जैसे कारोबार में प्रवेश करने का एक मुख्य कारण तो अर्थिक विपन्नता है। पहले के जैसे आज कोई भी ट्रांसजेंडर लोगों को नेक नहीं देते न ही शुभ अवसर पर उन्हें बुलाया जाता है और न ही उन्हें काम पर रखना चाहते है तो आखिर में उनके पास बचा एक रास्ता यही है वेश्यावृत्ति। इसके जिम्मेदार सिर्फ वहीं नहीं है बल्कि यह समाज है, सरकार है....और हर कोई है।

फिल्म में शबनम की माँ हलीमा की मृत्यु के जिम्मेदार शबनम को ठहराया जाता है और वह पुलिस से बचकर मध्यप्रदेश के अनुपपुर गाँव में पहुँचती है वहाँ कुछ गुण्डे नैना नाम की एक लड़की का बलात्कार करने की कोशिश करते हैं लेकिन शबनम उसे उन गुण्डों से बचाती है और नैना के घर में शबनम को सहारा दिया जाता है । लेकिन गुण्डे फिर शबनम की खोज में आते हैं। बलात्कार के लिए हिजड़े भी कम नहीं कहकर गुण्डे शबनम को नंगा कर मारने-पीटने लगते है। शबनम के साथ इतना सब होने के बावजूत भी लोग यह तमाशा देखकर बिना कोई प्रतिक्रिया के डर के कारण मौन होकर खड़े थे। किसी ने कुछ नहीं कहा न रोकने की कोशिश की शायद इसलिए कि वह एक ट्रांसजेंडर है जिससे उनका कोई लेना देना नहीं था । शबनम लोगों की इस निर्दयी मानसिकता और खौफ़ पर करारा व्यंग्य करते हुए कहती है कि "अपने डर और कायरता को सहनशीलता का नाम देकर पहले जागने वालों, आज यह हिजड़ा तुम लोगों में अपना अंश देख रहा है। ... अगर मैं तन से हिजड़ा हूँ तो तुम मन से हिजड़ा हो। तन का हिजड़ा तो फिर भी ताली पीटकर जीवन जी लेता है, लेकिन मन का हिजड़ा ताली पीटते हुए भी डरता है।"[6] शबनम की बातों को सुनकर लोगों की मानसिकता में बदलाव आता है और सभी शबनम का समर्थन करते हुए उसे गुण्डों से बचाते हैं।

शबनम उस गाँव में रहने लगती है और वह उस गाँववालों की बहुत चहेती बन जाती है । इसी बीच दूसरी ओर अधिकार की स्वार्थता में लुप्त राजनेता रतन सिंह और विनोद में अधिकार मोह को लेकर एक दूसरे के बीच ईर्ष्या पैदा हो जाता है । विनोद, रत्न सिंह को चुनाव में हराने के लिए शबनम को एक हथियार बना लेता है । वह शबनम को चुनाव में लड़ने को कहता है और नामांकन से लेकर चुनाव संबंधी सारे कार्यों में शबनम की मदद भी करता है । लेकिन जब रतन सिहं को विनोद की यह साज़िश का पता चलता है तो वह विनोद के सामने एक भारी रकम देने की बात कर विनोद को राज़ी कर लेता है । जब बात सुलझ जाती है तो विनोद शबनम से चुनाव के कुछ ही दिन पहले मिलता है और नामांकन वापस लेने को कहता है और यह कारण बताता है कि राजनीति बड़ी कुत्ती चीज़ है। राजनेताओं का कहना था कि "मौसी बात यह है कि रतनसिंह जैसे दिग्गज नेता पिछले 20 साल से यहाँ से चुनाव लड़ रहे हैं और 20 साल से जीत भी रहे हैं। आप उनके सामने यह चुनाव नहीं जीत पाएगी और यह जो खेल है न यह मर्दों का है आप जैसे हिजड़ों का नहीं।"[7] लेकिन शबनम को सारी राजनैतिक कुतन्त्रों का पता था इसलिए वह नामांकन वापस नहीं लेती है क्योंकि वह जानना चाहती थी कि राजनीति कुत्ती है या राजनेता।

विपक्षी नेता शबनम को चिढ़ाते है लेकिन शबनम का लोगों से यहीं कहना था कि "मैं एक किन्नर जरूर हूँ, हिजड़ा जरूर हूँ लेकिन मेरी सोच मेरी दृष्टि हिजड़ा दृष्टि नहीं है।"[8] चुनाव के समय वोट कमाने के लिए मासूम लोगों का फायदा उठाना राजनीति में आजकल बहुत आम बात

बन गई है यहाँ भी अपनी घटिया राजनीतिक चालों को चलने के लिए एक ट्रांसजेंडर का उपयोग किया गया और काम हो जाने के बाद उसे ठुकूरा देने वाले चालाक और स्वार्थी राजनेताओं का खुलासा भी फिल्म में हुआ है । फिल्म के अंत में सभी साज़िशों के बावजूद शबनम जीत हासिल करती है और एक नया इतिहास रचती है । इस तरह से शबनम बानो भारत की पहली ट्रांसजेण्डर एम एल ए बनती है । ट्रांसजेंडर गुरु पायल सिंह से एक साक्षात्कार में राजनीति में तकदीर आज़माने के बारे में जब पूछा तो उन्होंने यह जवाब दिया कि "राजनेताओं के ऑफर आये 15 लाख लो और अपना नाम वापस ले लो, मैं नहीं मानी तो मुझ पर पिस्टल तान दी । मैं सभा करती तो मेरे माइक के कनेक्शन काट दिए जाते, बिजली गुल कर दी जाती। फिर भी 17500 वोट मुझे लखनउ की जनता से मिले। मैं आभारी हूँ।"[9]

आज भारत के ट्रांसजेंडर समुदायों की हालात पहले से बेहतर हुई है। शिक्षा, नौकरी, राजनीति आदि क्षेत्रों में ट्रांसजेंडर लोगों को भी कुछ मायने में शामिल किए जाने लगे है और कानून व्यवस्था में भी कई बदलाव आए है । 2019 में पारित ट्रांसजेंडर व्यक्तिके अधिकारों के संरणक्षण का अधिनियम (Transgender Persons (Protection of Rights) Act, 2019) में ट्रांसजेंडर लोगों की सुरक्षा और कल्याण संबंधी कई कानून जारी किए गए है । ट्रांसजेंडर एवं क्वीर समूह का समर्थन करने तथा उनके स्वतंत्र जीवनयापन को मानकीकरण प्रदान करने हेतु कई संस्थाओं का भी आगमन हुआ है । किसी ट्रांसजेंडर व्यक्ति के प्रति भेदभाव दिखाना तथा शिक्षा, रोजगार, निवास, स्वास्थ्य आदि आवश्यक सुविधाओं के लिए उन्हें मना करना कानून के विरुद्ध है । हालाँकि इन अधिकारों को सुनिश्चित करना एवं व्यवहार में पूरी तरह से बरकरार रखने की जरूरत है, जो कि सबसे बड़ी चुनौती है ।

राष्ट्रीय कानून द्वारा हर क्षेत्र में ट्रांसजेंडर लोगों के लिए विशिष्ट आरक्षण स्थापित करने की भी आवश्यकता है। सरकार द्वारा इनके हित के लिए कल्याणकारी योजनाओं को जारी कर उन्हें सहायता और सहयोग देना जरूरी है। यह इसलिए जरूरी है क्योंकि अभी भी समाज के बहुमत लोग इन्हें इंसान नहीं जानवर मानते हैं। ट्रांसजेंडर मनीषा महंत का यहीं सवाल है कि "यहाँ महिलाओं को आरक्षण मिल सकता है, जातिगत तौर पर आरक्षण मिल सकता है, लेकिन बहुत कम संख्या में होने के बावजूद किन्नरों को क्यों नहीं, न तो हमारे महिला-पुरुष प्रधान समाज और न ही सरकार ने न कभी किन्नरों के उद्धार के बारे में सोचा है और शायद न ही सोच सकते हैं, जहाँ तक हो सकता है किन्नर समाज अपने समाज के लिए खुद प्रयास करता ही रहता है।"[10]

शबनम मौसी, मानबी बांदोपाध्याय, के. पृथिका यशिनी, लक्ष्मी नारायण त्रिपाठी, मधु बाई जैसे ट्रांसजेण्डरों ने समाज में ट्रांसजेंडर की परिभाषा बदलने में तथा अनेक ट्रांसजेंडर लोगों के लिए वे अभिप्रेरणा के पात्र बने हैं। ट्रांसजेंडर के सकारात्मक और प्रामाणिक चित्रण करने वाली फिल्में असल में उनका प्रतिनिधित्व करते हुए उन्हें जीवन में आगे बढ़ने के लिए आशा प्रदान करती हैं। ऐसी फिल्में उनके प्रति समाज में जो कलंक और गलतफहमियाँ मौजूत है उसे कम करने तथा सामाजिक बदलाव और सहानुभूति को भी बढ़ावा देने में भी सहायक है।

संदर्भ सूची

1. डॉ. एम. फ़ीरोज़ खान, डॉ. शिप्रा किरण, सिनेमा की निगाह में थर्ड जेण्डर, विकास प्रकाशन, कानपुर, 2018, पृ. 114
2. योगेश भारद्वाज, शबनम मौसी (फिल्म), 2005
3. वहीं
4. डॉ. एम. फ़ीरोज़ खान, थर्ड जेण्डर साक्षात्कार के आईने में, विकास प्रकाशन, कानपुर, 2020, पृ. 78
5. योगेश भारद्वाज, शबनम मौसी (फिल्म), 2005
6. वहीं
7. वहीं
8. वहीं
9. डॉ. एम. फ़ीरोज़ खान, थर्ड जेण्डर साक्षात्कार के आईने में, विकास प्रकाशन, कानपुर, 2020, पृ. 56
10. वहीं, पृ. 20

शोध छात्रा, हिन्दी विभाग
कोच्चिन विज्ञान व प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय (कुसाट)
कोच्चि (केरल), 682022

प्रख्यात साहित्यकार गोविंद मिश्र के लेखन के प्रेरणा स्रोत

डॉ जयशंकर रामजीत पाण्डेय

शोध सारांशः- समकालीन हिन्दी साहित्य के वरिष्ठ और श्रेष्ठ साहित्यकारों में गोविन्द मिश्र एक प्रसिद्ध नाम रहा है। आज इनकी उम्र लगभग पचासी वर्ष हो गयी है, फिर भी इनका लेखन कार्य शुरू है। गोविन्द मिश्र बहुमुखी प्रतिभा-संपन्न साहित्यकार है। ये श्रेष्ठ साहित्यकार होने के साथ-साथ भारत सरकार के केन्द्रीय प्रत्यक्ष कर बोर्ड के अध्यक्ष तथा योजना आयोग के सदस्य भी रह चुके हैं। इनका लेखन कार्य बहुत लंबा तथा सुदीर्घ रहा है। 1963 ई. से इनके लेखन की शुरूआत मानी जाती है, जो आज भी अनवरत चालू है। इनके लेखन की सर्वप्रमुख विशेषता यह रही है कि इनके उपर किसी व्यक्ति, वाद या विचारधारा का कोई प्रभाव नही था। ये लेखनकार्य को महान तथा स्वतंत्र मानते थे।

समकालीन रचनाकारों में इतना विशाल मौलिक साहित्य रचना करने वालों में इनका नाम सर्वप्रमुख लिया जाता है। इनके साहित्य पर आज बहुत चर्चा हो रही है। यह शोध लेख इनके लेखन प्रेरणा की सटीक तथा निश्चित जानकारी देने का सार्थक प्रयास कर रहा है। इनको लेखन की प्रेरणा कहाँ से मिली, कैसे मिली इसको लेकर शोधार्थियों के मन में हमेशा से जिज्ञासा बनी रहती है। इसी विषय को ध्यान में रखकर प्रस्तुत आलेख इनके लेखन की प्रेरणा के कारणों के तह तक जाकर जाँच पड़ताल की गयी है। आशा है कि यह जानकारी काफी हद तक इस समस्या का समाधान प्रस्तुत कर पाएगी।

बीज शब्द - लेखक, लेखन, प्रेरणा स्त्रोत, प्रेम, साक्षात्कार, आत्मकथा।

कोई व्यक्ति कैसे सफल साहित्यकार होता है, इसके पीछे भी कई कारण होते हैं। सभी जानते हैं कि लेखनकार्य त्याग, तपस्या, व अमरता का कार्य है। लेखक काल कवलित हो जाते हैं, लेकिन उनके लेखनकार्य अमर हो जाते हैं। लेखक अमर हो जाता है और उसका साहित्य आने वाले समाज के लिए धरोहर बन जाती है। इसीलिए कहा जाता है कि - "जो कह दिया सो बह गया,/जो लिख दिया सो रह गया।/एक प्रवाह बन गया,/दूसरा शाश्वत हो गया।

अमर साहित्य लिखना सरल काम नही है, यह तो सच्चे जीवन का मर्म लिखना होता है। समाज की सच्चाई, सत्य, विज्ञान, समता, बंधुता, मानवीयता तथा मनोरंजन को, लिखना सहज काम नही हैं। किसी असाधारण बात को, किसी के दर्द को, तड़पते बिलखते दर्द को, आँसुओं की कीमत को लेखक जब सच्चे भाव से लिखता है, तब वही साहित्य जाकर अमर होता है। जब व्यक्ति दिल के दर्द को, समय के सत्य को, अपने आस-पास घटित भाव को लिखता है, तो वह रचना और गुनी जाती है। गोविन्द मिश्र ने अपने साहित्य के माध्यम से अपने दर्द, अनुभव, झेले गए घटनाओं को जगह दी है। इनकी रचनाओं में आपको एक बैचैनी, खीझ, असन्तोष दिखाई देता है। लगता है जैसे गोविन्द मिश्र किसी गहरे तूफान से लड़ रहें हैं।

गोविन्द मिश्र के साहित्य से जुड़ने का मतलब है जीवन से जुड़ना। उन्होंने साहित्य एवं जीवन दोनों को कभी अलग नही समझा। इसीलिए उनके साहित्य में जीवन, समाज, उसके आसपास के परिवेश की झलक खुलकर सामने आई है। कभी-कभी आलोचक प्रश्न भी उठाते हैं कि मिश्र जी साहित्य को कभी जीवन से अलग नही कर पाए, यह तथ्य काफी हद तक सही भी है। क्योंकि जो व्यक्ति बचपन से ही मानव प्रेमी रहा हो, जो उन्हीं के सुख-दुख में बड़ा हुआ हों, तो स्वाभाविक होगा कि वह अपने युग के सत्य को, अनुभव को बड़ी सरलता से प्रस्तुत कर देता है। गोविन्द मिश्र ने भी यही कार्य अपने साहित्य के माध्यम से किया है। इनका शुरूआती साहित्य बचपन की कोमल अनुभूतियाँ था। इन्होंने लेखन कार्य अपनी आत्मप्रेरणा की पुकार समझकर किया। वरिष्ठ साहित्यकार डॉ. चन्द्रकान्त बांडिवडेकर के प्रश्न पर लेखक बचपन में लिखे अपने साहित्य पर कहता है, "मन में उठने वाली एक पवित्रता थी... उसकी कल्पना थी और जिसे मैं एक विशेष व्यक्तिके आसपास सजाकर देखता था, उसी प्रकार उस कल्पना को शब्द दे पाता था। वे कहानियाँ इस पवित्रता की कल्पना से

ही निकली। वे छपने के लिए थीं भी नही शायद एक ही व्यक्ति के लिए लिखी हुई चीज़ें थी।"[1]

गोविन्द मिश्र ने चौदह वर्ष की अवस्था से ही लेखन कार्य प्रारम्भ कर दिया था। जबकि गम्भीरता से उच्च लेखन कार्य तो उम्र के बाईसवें साल से शुरू किया था। वे बचपन से ही साहित्यकारों को बड़ी इज्जत देते थे। उनको देखकर उनके प्रति आदर श्रध्दा का भाव जागता था। वे लेखन को महान कार्य समझते थे। तत्कालीन समय में उनके चारों ओर कहानी और उपन्यास का वातावरण था, जिसके कारण इस क्षेत्र की तरफ वे आरम्भिक दौर में झुके। हिन्दी में साहित्य लिखना भी इनको एक अनजान मजबूत डोर खींच ले गई जबकि वे अग्रेंजी साहित्य से बी.ए., एम.ए.किया था। लेखन की प्रेरणा को लेकर वे 'संदर्भ और सवाल' पुस्तक में लिखते हैं, "विषय के रूप में हिन्दी मैनें बारहवीं दर्जे तक ही पढ़ी। बी.ए. में दूसरे विषय थी, एम.ए. में अग्रेंजी साहित्य मुख्य विषय थी। सृजनात्मकता अनायास हिन्दी में खींच ले गई, मुझे पता ही न चला। पता भी चलता तो इस मसले पर ढंग से सोचने की कूवत उस वक्त कहाँ थी। जब हिन्दी में कहानियाँ, उपन्यास लिखने लगा तो दो चीज़ें मेरे स्वभाव का हिस्सा बन गई, एक हिन्दी के अग्रज और समकालीन लेखकों से सम्पर्क रखना .... दूसरी चीज पहले से निकलती चली आयी- जिनसे सम्पर्क हुआ, जिनके साथ उठना-बैठना हुआ, उन्हें बेहतर जानने के लिए उनकी रचनाएँ पढ़ना। इस तरह लेखन के साथ-साथ दूसरों का रचा साहित्य पढ़ना .... मेरे लेखन कर्म का एक अनिवार्य हिस्सा बनता चला गया - जो आज भी कायम हैं।"[2] पचासी साल की उम्र तक कोई साहित्य लिखता नही, लेकिन ये आज भी लेखन कार्य से जुड़े है।

गोविन्द मिश्र यह जानते थे कि पहले के लेखक चाहे तो समाज बदल सकता थे, लेकिन आज के समय में यह संभव नही है। आज साहित्य का प्रभाव सीमित हो गया है। साहित्य गरीबी तो नही हटा सकता, लेकिन लोगों के सोच में परिवर्तन जरूर ला सकता है। गोविन्द मिश्र शुरूआती दौर में जो साहित्य लिखा उसपर अपनी बात रखते हुए कहते है, "अब तक मैने जो लिखा है वह बहुत कुछ इसी लापरवाही अंदाज में लिखा गया है। चौदह वर्ष की उम्र में मैंने अपनी पहली कहानियाँ लिखी थी। कुछ के नाम आज भी याद हैं - चंदनिया अरज करे, पूर्णमासी का भाग, मेरे आराध्य न आये .....। ये कहानियाँ खो गईं, उन सभी में एक जबरदस्त ललक थी .... पवित्रता के लिए, जिसे मेरी भावुक कल्पना एक व्यक्तिमें उतार-उतार लाती थी। भावुकता का बाहुल्य उन कहानियों में भले ही रहा हों, पर उन्हें कोरी कल्पना या हवाई नही कह सकूँगा।"[3]

गोविन्द मिश्र बचपन से ही बहुत भावुक किस्म के रहे जो उन्हें ऐसी रचनाओं के करीब लायी। इसीलिए कहा जाता है कि कवि कर्म के लिये जो सह्दयता चाहिए, वह इन्हें जन्मजात मिली। गोविन्द मिश्र कहते है कि, "जब में इंटर में पढ़ता था, बांदा में, सन् 53 से 55 के बीच, उम्र रही होगी कोई चौदह-पन्द्रह साल लेखन तब से शुरू हुआ और इत्तफाक कि पहली रचनाएँ कहानियाँ ही बनीं। मेरे हाइस्कूल के अध्यापक श्री देवेन्द्रनाथ खरे एक हस्तलिखित पत्रिका निकालते थे, उसमें एकाध वे रचनाएँ अगर कह सकते हैं कि छपीं तो छपीं। जिसे कहते हैं सर्जनात्मकता का आभास देना या प्रकटीकरण तो पहले-पहल वही हुआ। मेरे मैथ के अध्यापक श्री कृष्ण बिहारी श्रीवास्तव ने इंटर छोड़ने के समय जो सर्टिफिकेट दिया था, उसमें अग्रेंजी में एक जुमला भी लिखा था- 'ही हैज द मेकिंग्स ऑफ राइटर इन हिम।"[4]

गोविन्द मिश्र के शिक्षकों ने इनके अंदर के लेखक को पहचान लिया था, तभी तो इन्हें जन्मजात लेखक कहा। ये शुरूआती दौर में जो कहानियाँ लिखते थे, वह साथ में पढ़ने वाली एक लड़की के लिए थी, जिसे वे प्रेम करते थे। उसी प्रेम के इजहार करने में इन्होंने जो कहानियाँ लिखीं शायद वही इन्हें लेखन की तरफ झुका दिया। दूसरा कारण यह था कि इनके घर में पारिवारिक झगड़े भी बहुत होते थे, मसलन माँ-बाप में, नानी-मामी में, नाना-नानी में, दादा-बहू में जिसके कारण घर में प्रेम का माहौल न मिलने पर इनका प्रेमी मन घर के बाहर लगा। ये बचपन में ही अपने मुहल्ले के एक-दो लड़कियों को प्रेम कर बैठे। वही प्रेमभाव जब इंटर तक पहुँचा तो कहानियों के माध्यम से अभिव्यक्तहोने लगा।

डॉ प्रमीला विजय त्रिपाठी इनके लेखन के कारणों की खोज करके अपने शोध प्रबंध में लिखती है कि, "गोविन्द मिश्र की बाल्यावस्था जहाँ आर्थिक अभाव और पारिवारिक

कलह में बीती वही गुरू एवं स्नेहीजनों के स्नेहपूर्ण वातावरण ने उन्हें संघर्षशील रहने का मार्गदर्शन करते हुए योग्य भी बनाया। इसी कारण वे 14-15 वर्ष की अवस्था से ही कहानी लेखन में प्रवृत्त हो गये थे।"[5]

गोविन्द मिश्र किस बात से प्रेरित होकर साहित्य में आए या किसने प्रेरणा दी यह निश्चित कोई बाहरी साहित्यकार को बहुत बड़ा मानते थे, जिसे वे कई जगहों तथा अपनी आत्मकथात्मक पुस्तक 'धारा के विपरीत' में भी स्वीकार किया है। कारण नही मिल सका। इससे यह संकेत मिलता है कि ये स्वप्रेरित होकर साहित्य लेखन में आए। बीच में नौकरी, पढ़ाई की कश्मकश ने इनके लेखन को दबाए रखा, लेकिन जैसे ही नौकरी की तरफ से निश्ंचित हो गए तो 1963 ई. से फिर लेखन कार्य की तरफ सक्रिय हो गए। अपने को व्यस्त रखने के लिए भी इन्होंने लेखन की तरफ ध्यान दिया। अच्छी नौकरी प्राप्त करने के बाद भी ये लेखन को उससे बड़ा मानते थे। नौकरी से इन्हे कभी मानसिक संतुष्टि नही मिली। नौकरी और पत्नी से कभी इनकी बनी नही, दोनों से छत्तीस का आकड़ा रहा।

हाईस्कूल, इंटर की पढ़ाई के दौरान ही हिन्दी भाषा पर इनकी अच्छी पकड़ हो गई थी। वाद-विवाद प्रतियोगिताओं, नाटकों में खुलकर भाग लेते थे। बांदा में कवि सम्मेलन होता तो आधी-आधी रात बैठकर कवि-सम्मेलन सुनते। मंसूरी ट्रैनिंग कॉलेज हो या नागपुर ट्रैनिंग कॉलेज गोविन्द मिश्र को लेखन में रुचि बनी रही। जब 1963 ई. में इनकी नियुक्ति धनबाद हुई तो ये लेखन की तरफ गंभीर हो गए। यही पर इन्हें गोष्ठियों में नई रचनाओं का पाठ करने का मौका मिलने लगा। एक पुस्तिका भी दोस्तों की मदद से निकाली, जिसका नाम 'भटकता तिनका नई आस्थाएँ थी। धीरे-धीरे लिखने की प्रवृत्ति बढ़ती गई। लोगों का प्रोत्साहन मिलता गया तथा साहित्यकारों की संगति का अच्छा असर हुआ। जब इनकी एक कहानी 'नए-पुराने माँ बाप' बालकृष्ण राव जी की 'माध्यम' पत्रिका में छपी तो इन्हें अपार खुशी हुई। इसी कहानी के नाम पर इनका पहला कहानी-संग्रह छपा। उस समय ये हर हप्ते एक कहानी लिख लेते थे। इसके लिए बाकायदा एक टाइपराइटर भी खरीद लिया था। बहुत सी कहानियाँ छपती नही थीं, वापस आ जाती थी, फिर भी ये हिम्मत नही हारे लिखते रहे। हाँलाकि लेखक खुद उस दौर की अपनी कहानियों को अधकचरी कहानियाँ कहता है, क्योकि कथ्य में गंभीरता नही थी।

गोविन्द मिश्र के हाईस्कूल शिक्षक देवेन्द्रनाथ खरे लिखते है कि, "नानी की कथाएँ परीलोक का सृजन करती हैं। उसकी अनुभूति ही परीलोक की विभूति बनती है और परीलोक नानी की अलौलिक संपदा हो अत्यंत मनोरम स्वरूप ग्रहण कर लेता है। नानी की कहानियों की जो अमिट छवि बालमन में अंकित हुई, वही छवि गोंविद की पूंजी बनी।"[6]

लेखक या लेखन को ये क्यों महत्वपूर्ण मानते हैं इसका एक उदाहरण इस बात से देखा जा सकता है कि जब इनका पहला उपन्यास वह/अपना चेहरा इनके दिल्ली आने पर सरकारी तंत्र की विद्रूपता को लेकर लिखा, लेकिन कोई प्रकाशक नि:शुल्क छाप नही रहा था। राजकमल व अक्षर प्रकाशन दो साल तक चुलाते रहें, क्योंकि प्रकाशक मुफ्त में छाँपना नही चाहते थे। गोविन्द मिश्र ने राजेंद्र यादव को सीधे-सीधे कह दिया- "मैं इस उपन्यास को फाड़कर फेंक दूँगा लेकिन अपने पैसे लगाकर नही छपवाऊँगा और न किसी से पैसे दिलवाऊँगा खासकर तब जब आपके प्रकाशन का नाम इसमें जाना है।"[7] काफी संघर्षों के बाद राजेंद्र यादव ने इस शर्त पर 'वह अपना चेहरा' उपन्यास छापा कि आपको इसका पैसा कुछ भी नही मिलेगा। इस तरह 1969 ई. में इनका पहला उपन्यास 'वह/अपना चेहरा' अक्षर प्रकाशन से छपने के लिए तैयार हुआ। गोविन्द मिश्र ने कभी हालात से समझौता नही किया। लेखन व लेखक को प्रकाशकों के सामने झुकने नहीं दिया।

गोविन्द मिश्र अपनें 'सर्जना' निबंध में लेखन क्यों, सवाल पर लिखते हैं कि, "मुझे लगता है कि मेरे जीने का संघर्ष, लेखक के रूप में प्रतिष्ठित होने का संघर्ष और सबसे उपर सर्जना का जो अपना संघर्ष होता है, वह इन सबमें निहित यातना से गुजरना ...।"[8]

गोविन्द मिश्र को चरखारी की धूल, परिवार में निरन्तर कई मोर्चो पर चलती लड़ाइयाँ, स्वयं का व्याकुल मन, प्रेमी दिल तथा बचपन से ही लेखन कार्य को महान समझना जैसा भाव उन्हें लेखन क्षेत्र में लाया। कुछ परिस्थितियाँ

किशोर उम्र की थीं, जिसके कारण उन्हें अपने प्रेम भाव को व्यक्त करने के लिए सहज प्रवृत्ति, जन्मजात प्रतिभा ने अनुकूल माहौल पैदा किया जिससे शुरूआती दौर में ही साहित्य लिखना, पढ़ना, सुनना अच्छा लगता था। इन्ही सब का मिला-जुला परिणाम यह रहा कि वे तमाम विरोधों का सामना करते हुए भी लेखनकार्य में जुटे रहें। इनको दो तरह की निराशाओं ने भी लेखन में बनाए रखा पहला प्यार में असफलता तो दूसरी नौकरी से निराशा। इससे बचने के लिए लेखन में अपने को खपाते रहे। उनके लिए लेखन और जीवन एक शब्द था। लेखन की प्रेरणा इनके भीतर से जागी। वे अपने एक साक्षात्कार में कृष्णदत्त पालीवाल से कहते है कि, "अपने मन की बात को शब्द में बाँधने की तमन्ना शुरू से ही रही। कोई कुछ भी रहें, रचना मेरे लिए ईश्वरीय कृपा का फल है। रचना-प्रक्रिया के भीतरी स्त्रोत की बात क्या कहूँ, बड़ी रहस्यपूर्ण प्रक्रिया है। एक रचना पूरी करता हूँ तो दूसरी रचना आउटर पर खड़ी प्रतीक्षा करती मिलती है।"

स्वयं लेखक की आत्मकथात्मक पुस्तक 'धारा के विपरीत' जो कि 2022 ई. में प्रकाशित हुई थी, उसमें लेखक अपने शुरूआती साहित्य प्रेम को उजागर किया है जिसमें अपने गुरू देवेन्द्र मास्टर का जिक्र करते हुए कहते है कि उन्होंने उन्हें लिखने के लिए थोड़ी बहुत प्रेरित भी किया था। इलाहाबाद विष्वविद्यालय में पढ़ते समय प्रो. देव, फिराक गोरखपुरी, विजयदेवनारायण साही, डॉ. धीरेन्द्र वर्मा की बौद्धिकता इन्हें बहुत प्रेरित किया। इलाहाबाद में पढ़ते समय इनके मन में भी बौद्धिकता की ललक पैदा हुई। आत्मकथा में लिखते है, "बौद्धिक विद्वान होना इलाहाबाद में करीब-करीब फैशन सा था उन दिनों ...... खूबसूरत फैशन। मेरे मन में बौद्धिक होने की ललक वहाँ से पैदा हुई। फिराक और प्रो. देव पर मेरे लेख है।"[9] इससे पता चलता है कि ये सभी कारण थे जिन्होंने इन्हें लेखन के लिए प्रेरित किया।

निष्कर्ष -जीवन के पहले पड़ाव में प्रेम की असफलता, निराशा ने इनसे साहित्य लिखवाया, इस तथ्य से खुद लेखक भी इन्कार नही करता है। नौकरी मिलने के बाद जीवन के दूसरे पड़ाव में दफ्तर की दाँव-पेंच, राजनीति ने इनसे साहित्य लिखवाया। फिर जीवन के तीसरे पड़ाव में अच्छे आदमी की प्रतीति में लेखन कार्य किया। इन तीनों तत्वों को अगर एक साथ रखकर पूछा जाय कि किसका प्रभाव लेखन पर ज्यादा पड़ा तो वह हैं प्रेमतत्व। यही वह तत्व हैं शक्ति हैं जिसने लेखक को सबसे ज्यादा प्रेरित किया। इसी प्रेम को पाने के लिए लेखक ने साहित्य सृजन किया। आज उम्र के चौथे पड़ाव में भी वे प्रेम को खोजने का प्रयास कर रहे हैं लेकिन यहाँ भी इन्हें निराशा ही मिला।

हम निष्कर्ष रूप से कह सकते है कि गोविन्द मिश्र के लेखन की प्रेरणा उनकी खुद की परिस्थितियाँ तथा इच्छाएँ रही हैं। उन्हें किसी ने प्रेरणा या प्रेरित नही किया था। उनका साहित्य लेखन स्वप्रेरित रहा है। उनकी जन्मजात प्रतिभा तथा आंतरिक इच्छाएँ रहीं जो कि इतना विशाल साहित्य सृजन करवाया। परिवार, नौकरी, जीवन तथा प्रेम से इन्हें निराशा ही मिली। इनके व्याकुल मन को शांति साहित्य में ही मिलता था, इसीलिए इन्होंने अपना पूरा जीवन साहित्य-सेवा में झोंक दिया।

संदर्भ ग्रन्थः-

1. गोविन्द मिश्र, मेरे साक्षात्कार, किताबघर प्रकाशन, दरियागंज नई दिल्ली, संस्करण 2015, पृष्ठ संख्या 258
2. गोविन्द मिश्र, संदर्भ और सवाल, अमन प्रकाशन कानपूर, प्रथम संस्करण 2018, पृष्ठ संख्या 05
3. गोविन्द मिश्र, संदर्भ और सवाल, अमन प्रकाशन कानपूर, प्रथम संस्करण 2018, पृष्ठ संख्या 14.15
4. डॉ. उर्मिला शिरीश, बयाबां में बहार, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2014. पृष्ठ संख्या 225
5. डॉ. प्रमिला विजय त्रिपाठी, गोविन्द मिश्र और उनकी साहित्य साधना, जयभारती प्रकाशन इलाहाबाद-3, प्रथम संस्करण 2004, पृष्ठ संख्या 21
6. डॉ.चन्द्रकांत बांदिवडेकर, गोविन्द मिश्र, सृजन के आयाम, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2015 पृष्ठ संख्या 12
7. डॉ. उर्मिला शिरीश, बयाबां में बहार, किताब घर प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2014 पृष्ठ संख्या 101
8. गोविन्द मिश्र, समय और सर्जना, राधाकृश्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 1997, पृष्ठ संख्या 89
9. गोविन्द मिश्र, धारा के विपरीत, राजकमल प्रकाशन, दरियागंज नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2022, पृष्ठ संख्या 40

हिंदी विभागाध्यक्ष, द.ग.तटकरे महाविद्यालय
माणगांव-रायगड

'उत्कोच' उपन्यास में दलितों के मानवाधिकार का हनन : राजनीतिक स्तर

अश्वती टी वी

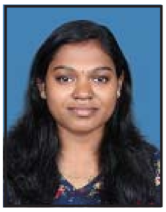

साहित्य की सहायता से हमें समाज और वस्तुजगत को मानव के व्यक्तित्त्व ,गरिमा,स्वतंतत्रता के विकास के लिए समान अधिकारों की पक्षधरता निर्मित की जानी चाहिए थी। लेकिन इसके विपरीत यहाँ प्रगतिशील मूल्यों के नाम पर कुछ ऐसे मूल्यों का प्रचार हुआ जो बाह्य रूप में आकर्षक होकर भीतर ही भीतर वर्णव्यवस्त ,सामंती,पूंजीवादी सहायक मूल्यों को निर्मित करने के लिए थे। डॉ.मिथिलेश शर्मा कहते हैं- "भारतीय समाज में अस्पृश्यता का रोग सदियों पुराना है। भगवान बुद्ध से लेकर डॉ. बाबासाहेब अंबेडकर तक ने सतत रूप से इस रोग को समाप्त करने का प्रयास किया है।"[1] हिंदुस्तान की समाज व्यवस्था की जड़ों में रचे-बसे भेदभाव, छुआछूत,अंधविश्वास,रूढ़िग्रस्तता, अज्ञान इन प्रश्नों को भोगने के लिए मज़बूर एक विशाल समुदाय की जाग्रति का साहित्य दलित साहित्य है।

दलित साहित्य वास्तव में परिवर्तन के लिए लिखा गया साहित्य है। यह साहित्य बहुत बड़े समुदाय के सामाजिक अधिकार के लिए संघर्षरत है। परिणाम स्वरूप 8 जनवरी 1994 को भारतीय संसद द्वारा मानवाधिकार संरक्षण अधिनियम पास कराया गया, जिसके अधीन राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग, राज्य मानवाधिकार आयोग और मानवाधिकार सभा के निर्माण अनुबंधित प्रावधान थे। देश में सम्पूर्ण सामाजिक संस्थाओं ,राजनैतिक दलों द्वारा नगर में रहनेवालों की स्वतंत्रता संबंधी निरंतर बढ़ती मनोकामना के फलस्वरूप ही इस आयोग के अधिकारसीमा देश में दिन-प्रतिदिन हो रही मानवधिकार हनन सम्बन्धी तकलीफों को इकट्ठा करना, खोज करना तथा राज्य एवं केंद्र सरकारों को निदान सुझाना आदि सम्मिलित हो गये। प्रथम दृष्ट्या मानवाधिकार का हनन नज़र आने पर इसके खिलाफ कार्रवाई करना आयोग की मुख्य जिम्मेदारी है। इसके अंतर अधिकारों का दुरुपयोग, पुलिस कस्टडी में होनेवाली हत्या, समाज के कमज़ोर वर्गों जिसके अंदर मजदूर का शोषण,महिला अल्पसंख्यक और नागरिक स्वतंत्रता संबंधित विषय मुख्य हैं। अपराधी सरकारी अधिकारियों के खिलाफ दंड करने का अनुशसन भी इस आयोग के अंदर आता है।लोक मान्य तिलक के अनुसार "स्वराज्य हमारा जन्म सिद्ध अधिकार है।"[2] लेकिन राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग द्वारा इतने सारे अधिकारों का प्रावधान करने के बाद भी देश में मानवाधिकार हनन, खासकर दलित मानवाधिकार हनन की संख्या दिन प्रतिदिन बढ़ती जा रही है।हैरोल्ड लांसकी के अनुसार "अधिकार मानव जीवन की ऐसी परिस्थितियाँ हैं जिनके बिना सामान्यतया कोई व्यक्ति अपने व्यक्तित्त्व का पूर्ण विकास नहीं कर सकता।"[3] हमारे लिए यह सबसे अधिक चिंता करने का विषय है कि आज मानव में मानवीयता नष्ट होती जा रही है। जो व्यक्ति अधिकार पाकर उच्च स्थान में बैठा है, वही विरोध करने लगा है। सभी मानव के समान दलितों को भी गरिमा पूर्ण जीवन जीने का अधिकार है। गरिमा पूर्ण जीवन जीने के अधिकार के लिए संघर्ष करना होगा। इसी संघर्ष को जीवन का लक्ष्य मानकर दलित लेखकों ने साहित्य की सहायता से दलितों के साथ होते अन्याय को उजागर करने का प्रयास किया है। हिन्दी में दलित जीवन से संबंधित रचनाओं का आरंभ वैसे तो कबीर, रैदास, हीरा डोम, राहुल सांकृत्यायन, निराला, प्रेमचंद, अमृतलाल नगर और जगदीशचंद्र जैसे रचनाकारों में दिखाई देता है, फिर भी उनकी रचनाओं की जानकारी दलित साहित्य के रूप में बहुत कम तथा शूद्र और निम्नवर्गीय समूह पर केन्द्रित साहित्य के अनुसार अधिक होती है । 1980 तक आते-आते हिन्दी में दलित साहित्य के रूप में रचनाएँ लिखना शुरू हुआ।

साहित्य की अन्य विधाओं की अपेक्षा हिन्दी में दलित रचनाकारों द्वारा दलित उपन्यास बहुत कम ही लिखे गए हैं। लेकिन जो भी उपन्यास लिखे गये हैं उनमें वर्तमान समाज व्यवस्था में दलित जीवन के अधिक यथार्थ और विद्रोही चेतना चित्रित हैं । इसी कारण से वर्तमान युग में दलित साहित्य के विभिन्न रूपों में से उपन्यास विधा को बहुत अधिक लोकप्रियता मिल गई। उपन्यास विधा को लोग शिक्षा प्रसार और मनोरंजन के लिए उपयोग करते हैं । पर आधुनिक युगीन दलित उपन्यासों में मनोरंजन की अपेक्षा सामाजिक सजगता एवं मानवाधिकार के संरक्षण का उल्लेख अधिक मिलता है। डॉ. सुरेश सिंहा के अनुसार "वर्ग-वैषम्य, साधारण मानव जीवन की कुंठाएँ एवं अतृप्त वासनाएँ तथा कामनाएँ , आर्थिक विषमताएँ,

मध्यवर्ग का शोषण, असमानताएँ आदि सामाजिक समस्याओं से जो निष्कर्ष उपन्यास में होता है और विचार या उद्देश्य निर्मित है वही उसका जीवन दर्शन होता है।"[4] आज हिन्दी साहित्य में जो दलित साहित्य लिखा जा रहा है ,इसका बड़ा अंश स्वयं दलितों द्वारा लिखित है। हिन्दी में जिन दलित साहित्यकारों ने अपनी पहचान बनाई है, उनमें ओमप्रकाश वाल्मीकि, मोहनदास नैमिशराय, जयप्रकाश कर्दम, प्रेम कपाड़िया, सुशीला टाकभौरे, कौशल्या बैसंत्री, सत्यप्रकाश, कंवल भारती, सोहनलाल सुमनाक्षर, माता प्रसाद आदि प्रमुख हैं। इन लोगों की भाषा तो भूख से बिलबिलाते, तपती धूप में नंगे बदन में मिट्टी तोड़ते और ठंडे से ठिठुरते उस मानव की भाषा है।

जयप्रकाश कर्दम के 2019 में प्रकाशित नया उपन्यास है 'उत्कोच'। इसमें मानवाधिकार संरक्षण के सात - साथ समाज की एकता और अखंड़ता को बनाए रखने की कोशिश हुई है। यह उपन्यास साहित्य की प्रगतिशील चिंतन को आगे बढ़ाता है। उत्कोच का शाब्दिक अर्थ 'भ्रष्टाचार' है। इसका नायक मनोहर है। बड़ी आर्थिक विषमता में भी पढकर वह एक्सईज़ विभाग में क्लर्क की सरकारी नौकरी हासिल करता है। दलितों की सामाजिक विषमता और गरीबी की पीड़ा दिखाकर मनोहर अपने मित्र सुंदरलाल से कहता है- "देखो बनिए व्यापार करके खूब धन कमा रहा है। क्षत्रियों के पास जमीन-जयदाद है ही । सवर्ण हिंदुओं में से नौकरियों में अधिकतर ब्राह्मण और कायस्थ हैं। इनके बाप -दादा पहले से ही नौकरियों में रहे हैं। उनकी पेंशन आती है जो अलग ।इनमें बहुत से ब्राह्मणों के परिवार मंदिरों से जुड़े हैं। वहाँ वे पूजारी का काम करते हैं, जहाँ पर खूब सारा पैसा चढ़ावे में आता है। यह उनकी अतिरिक्त कमाई है। हमारे पास क्या है।"[5] एक दलित के पास क्या है? इसका उत्तर वर्तमान समूह में सभ्य कहनेवाले मानव कभी नहीं सोचेगा। वर्तमान दलित समुदाय को हिन्दू वर्ण व्यवस्था ने अंदर ही अंदर आर्थिक एवं शैक्षणिक रूप में कमज़ोर कर दिया है। इस उपन्यास के ज़रिए स्त्रियों के दो रूप दिखाई दे रहे हैं। एक तो उच्चवर्ग की और दूसरी निम्नवर्ग की। उच्चवर्ग की स्त्री भ्रष्टाचार से मिले धन से साड़ी और गहने पहनकर चमक रही है। दलित दूसरीवाली अपने पति के कर्मठ, सत्यनिष्ठ और मेहनत से कमाकर घर चला रही है। लेकिन वह उससे संतुष्ट नहीं है। यह सिर्फ आर्थिक समस्या नहीं है। इसमें सामाजिक भेदभाव भी देखा जा सकता है। यह आम जनता की काली सच्चाई है। इसके साथ सरकारी विभागों के द्वारा भी सक्रिय राजनीति में चलकर दलितों का शोषण होता रहा। इस उपन्यास के ज़रिए जयप्रकाश कर्दम ने सरकारी कार्यलय में होनेवाले भ्रष्टाचार की ओर भी प्रकाश डाला है।

उच्चवर्गीय सभ्यता के निर्माताओं ने अपनी ही इच्छा के अनुसार दलित लोगों को उनके राजनीतिक अधिकारों से वंचित रखा है। दलितों ने पिछले दो हजार वर्षों से इस प्रकार की दासता और दमन को भी सहनकर इससे मुक्तिपाने का मार्ग भी सोचा है। इसके लिए बाबा साहेब का योगदान महत्वपूर्ण था । डॉ.अंबेडकर जैसे चिंतकों ने कहा है कि राजनीतिक सत्ता हर तालों की चाबी होती है । कारण यह है कि सत्ता ही वास्तव में नीति बनाती है,वही उन नीतियों को क्रियान्वित करवाती है। अगर दलितों के हाथ पर राजनीतिक सत्ता आ जाए तो उससे दलितों का विकास व उत्थान के मार्ग मिल सकते हैं। ओमप्रकाश वाल्मीकि के शब्दों में- "डॉ. अंबेडकर ने दलितों में चेतना जगाकर उन्हें मुक्तिसंघर्ष से जोड़ा । वर्णव्यवस्था ने युवा पर गुलामी के जो बंधन कसे थे, उन्हें तोड़ने में डॉ.अंबेडकर का आंदोलन जहाँ एक ओर सामाजिक और वैचारिक आंदोलन था, वही वह राजनीतिक आंदोलन भी था।"[6] राजनीतिक समानता का मतलब है कि जन्म स्थान, जाति, धर्म या मूलवंश संप्रदाय के आधार विभेद के बिना सभी नागरिकों को राजनीतिक प्रक्रिया में शामिल होने के अधिकार बराबर हैं। अनुच्छेद 16 में लोक नियोजन के विषय में अवसर की तुल्यता की गारंटी दी गई है और अनुचछेद 325 तथा 326 में सभी वयस्कों को चुनावों में भाग लेने का समान अधिकार है। इन तमाम नियमों - कानूनों के आने के बाद भी इन सभी की अपनी सीमा है,क्योंकि सभी में बहुमत ब्राह्मणवादी पार्टियों का ही है। इस कारण से चाहकर भी बड़े पैमाने पर दलित सिद्धांतों का विकास नहीं हो रहा है।

स्वतंत्र्योत्तर राजनैतिक व्यवस्था मानव का विशेषकर दलित समाज का अधिक शोषण करती रहती है। इस व्यवस्था में दलित सिर्फ वोट बैंक हैं ।पूंजीपति इज़्जतदार वर्ग अपनी प्रभुसत्ता को बनाए रखने के लिए समाज के शोषित वर्गों को दबा रखकर उनके अधिकारों का शोषण करता रहता है। आजादी से पहले राजनीति देशभक्तिएवं देश की आजादी के लिए योग्य थी। लेकिन आजादी के बाद वह केवल सत्ता प्राप्ति और धन प्राप्ति का केंद्र बनी हुई है। जिसके कारण से दलित समाज के शोषण की समस्या और भी बढ़ गई है। डॉ. मधु चतुर्वेदी कहते हैं कि "मनुष्य स्वतंत्र

उत्पन्न होता है,फिर भी प्रत्येक स्थान पर बंधन में है।"[7] दलित जीवन का वास्तविक जीवन शैली चित्रण करने में दलित उपन्यास का स्थान सबसे आगे है। दलित समाज में दलितों के राजनीतिक अधिकारों का उल्लंघन का चित्रण दलित उपन्यासों में हुआ है। बीसवीं सदी की शुरुआत में दलितों की हालत में राजनीतिक तौर पर बड़ा परिवर्तन आने लगा था। आरक्षण प्रक्रिया के कारण सरकारी नौकरी भी उनको मिलने लगी। दलित लोग हर जगह प्रतिनिधित्व कर रहे हैं। लेकिन यहाँ भी सवर्ण तो दलितों को समानता करके देख रहे हैं। 'उत्कोच' उपन्यास में भी असमानता को भ्रष्टाचार के रूप में दिखाया गया है। इस उपन्यास में शिक्षा में भ्रष्टाचार,राजनीतिक भ्रष्टाचार,सरकारी विभागों में भ्रष्टाचार आदि को देखने को मिलते है। यह एक सच्चाई है कि भ्रष्टाचार के कारण किसी न किसी के अधिकार का हनन संभव है। उपन्यास में सुंदरलाल कहता है "ठीक कह रहे हो। थाना-कोर्ट,कचहरी सब जगह भ्रष्टाचार फैला है। गरीब और बिना रसूखवाले आदमी की कहीं कोई सुनवाई नहीं है। इस भ्रष्टाचार के कारण आम आदमी को न्याय नहीं मिल पाता है।"[8] भारतीय संविधान के अनुसार व्यक्ति हो या वर्ग सबको समानता,स्वावलंबन के जीवन जीने का अधिकार है। लेकिन प्राचीन काल से लेकर भारत में वर्णव्यवस्था ने लोगों में असमानता फैलायी है। तथाकथित लोग अपने स्वार्थ के कारण कानूनों को मानने के तैयार नहीं हैं और वे दलितों को मूर्ख बनाकर, धोखे में रखकर अपने अधिकारों से वंचित रखते हैं।

वर्तमान दलित समुदाय को हिन्दू वर्ण व्यवस्था ने भीतर ही भीतर आर्थिक एवं शैक्षणिक स्तर के साथ राजनीतिक स्तर भी कमजोर कर दिया है। उत्कोच उपन्यास में मनोहर की पत्नी श्यामा पूछती है- "मनोहर। तुम इतने पढ़े -लिखे और इंटेलिजेंट हो, फिर इस नौकरी में क्यों हो। तुमने कोई दूसरी अच्छी नौकरी पाने की कोशिश क्यों नहीं की?"[9] मनोहर अपनी आपबीती सुनाते हुए कानून के अनुसार नियुक्ति होकर भी उसी पर हो रहे भ्रष्टाचार को उजागर करता हुआ कहता है-"साक्षात्कार में नहीं निकल पाया। हालांकि हर बार मेरा साक्षात्कार अच्छा हुआ, लेकिन हर बार मुझे साक्षात्कार में कम अंक मिले और मैं आफ़ीसर बनने में सफल नहीं हो सका। लिखित परीक्षा में मुझसे कम अंक पानेवाले कई लोग साक्षात्कार में अधिक अंक पाकर सफल हो गए। जबकि उनका साक्षात्कार भी मुझसे अच्छा नहीं हुआ था।"[10] अनुच्छेद 16(4) के अनुसार केंद्र एवं राज्य सरकार की नौकरियों में उचित प्रतिनिधित्व नहीं पानेवाले पिछड़े वर्ग के लोगों के लिए पद आरक्षित करने का उल्लेख है। लेकिन जो आरक्षण नियमों के तहत जो प्रावधान किया गया है, उनका सही ढंग से क्रियान्वयन नहीं हो रहा है।जिन अच्छी कमाई वाले सेक्टरों में दलितों को पोस्टिंग देने के लिए उच्च अधिकारी तैयार नहीं होते हैं। वहाँ ज्यादा सालरी होगी। पर दलितों को कम कमाई कमवाली सीट दी जाती है। इसका कारण यह है कि उच्चवर्गों को इसीसे मिलनेवाले रिश्वतों को लेने के लिए ज़्यादा कमाईवाली सीटों पर बैठनेवाले उच्चवर्गीय अफसर सहायता करते हैं।

ज़्यादातर दलित शहर की गंदी बस्तियों में जीते हैं। असमानता, विसंगतियाँ,अशिक्षा एवं अभाव के बीच उनके बचपन को कुचल दिया जाता है। वे सम्पन्न सवर्ण समाजों से दूर फेंके गए मानव हैं। दलितों के गरीबों और असहायवस्था को बदलना ही होगा। वहाँ उनके लिए पीने के लिए पानी की सुविधा नहीं है,बिजली नहीं,देश के नागरिक होते हुए भी उनके पास राशनकार्ड नहीं,स्थाई निवास के लिए जगह नहीं है। धीरज इस असहाय लोगों को अपनी आवश्यकताओं के सामने रखने का अवसर देते हुए एक कार्यक्रम आयोजित करता है। इसमें धीरज के भाषण से दलित लोगों को राजनीतिक क्षेत्र में जितनी असमानता सहन करना पडता है , उसका पता चलता है- "इन्हें भी इस देश के नागरिक होने का अधिकार चाहिए। प्रत्येक वार्ड मेम्बर का यह कर्तव्य है,वे अपने वार्ड की सुविधा और सुरक्षा का ध्यान रखे। महानुभाव, आपके वार्ड में और आपके नगर में सबसे अधिक इन्हीं लोगों की सुविधाओं की जरूरत है। इनके बच्चे भूखे मर रहे हैं। शिक्षा स्वास्थ्य जैसी प्राथमिक जरूरतों से ये अब भी वंचित है। हमारे देश का लोकतंत्र इनके लिए क्या कर रहा है।"[11]संविधान के 73 वें संशोधन के द्वारा ग्राम पंचायत समिति और जिला पंचायतों की त्रिस्तरीय पंचायती राज व्यवस्था पूरे देश में लागू की गई है। इसलिए महापौर,वार्ड मेम्बर और मंच पर उपस्थित राजनीतिक नेताओं आदि इन समस्याओं को खुशी के साथ स्वीकार कर लेते हैं। लेकिन इनपर कोई परिणाम नहीं हो जाएगा क्योंकि भारत की उन्नति के लिए नियोजित ये सदस्य अपने लालच के कारण भारत को नाश करने की शक्तियाँ बन गई हैं।

21 वीं सदी में भारत से आरक्षण हटाने के लिए सवर्ण लोगों ने आंदोलन कर रहे हैं।लेकिन ऊँच-नीच,

मैला उठाने की घटना, छुआछूत,खेत में शौच जाने से दलित बच्चों को मृत्यु के घाट उतारना आदि समस्याओं को वे नज़रअंदाज़ करते हैं। जयप्रकाश कर्दम जी इस उपन्यास में दलितों और सवर्ण के बीच निर्मित हुए फासले को कहते हुए आरक्षण के महत्व की ओर भी दृष्टिपात कर देतें है। भारत में आरक्षण को लेकर उपन्यास के सवर्ण पात्र नरेश सक्सेना रुग्ण मानसिकता से ग्रस्त है। वह जो कहता है "इनको क्या दिक्कत है नौकरी की। दिक्कत तो हमें होती है कोई देखा ही नहीं रहा है कि साधारण पढ़े-लिखे और आयोग्य लोग आसानी से सरकारी नौकरी में आ रहे हैं और ऊँची-ऊँची डिग्रियाँ लिए हुए योग्य लोग सड़कों की खाक छान रहे हैं।"[12] योग्य और अयोग्य का प्रश्न उचित है तो दोनों वर्गों को एक जैसी सुविधाएँ देनी चाहिए । एक जैसा खाना ,एक जैसा रहन-सहन ,एक जैसा पहनावा और फिर योग्य योग्य और अयोग्य का चुनाव किया जाया तो बेहतर होता। आरक्षण भारतीय राजनीति के लिए हमेशा लोकतंत्र पर कब्जा करने का हथियार होता है। आरक्षण किसे? क्यों? और कितना समझना राजनेताओं को आवश्यक लगा नही। नरेश सक्सेना यह भी कहता है - "यह तो राजनीति का मामला बन गया है आजकल। आरक्षण को खत्म करने की बात तो छोड़िए, प्रत्येक राजनीतिक दल ने वोट के चक्कर में इन एस सी , एस टी को सिर आंखों पर बैठा रखा है। हर दस साल बाद संसद द्वारा आरक्षण को अगले दस साल के लिए बढ़ा दिया जाता है। किसी भी दल का कोई भी संसद आरक्षण के विरोध में ठीक से चूं तक नहीं करता । इसलिए यह दिक्कत खत्म होनेवाली नहीं है। यह तो बने रहेगी।"[13] बाबा साहेब भीमराव अंबेडकर आरक्षण को सामाजिक समरसता का मूल मंत्र मानते थे। आरक्षण वास्तव में ब्राह्मणों द्वारा निर्मित जातिगत ऊँच-नीच, छुआछूत, कर्मकांडों के अत्याचारों को खत्म करने के लिए किया गया था। लेकिन इसी आरक्षण के नाम पर आज भी उच्च शिक्षण संस्थानों,सरकारी विभागों और यहाँ तक कि संसद में सवर्ण लोग कुंडली मारकर बैठे हुए हैं। यथार्थ के धरातल पर किसी भी सरकार के मंत्रियों की जाति का अन्वेषण कर दिया जाय तो पता चलेगा कि अधिकतर मंत्री उच्च जाति से संबंध रखते हैं। उपन्यास के जरिए सुंदरलाल कहता है- "बिल्कुल जी,देश को लूट रहे है ये राजनेता। भ्रष्टाचार को बढ़ावा तो राजनेता ही दे रहे हैं। यदि राजनीति भ्रष्टाचार से मुक्त हो जाए तो देश से भ्रष्टाचार खत्म हो जाएगा।"[14] अनुच्छेद 46 दलितों के लिए प्रासंगिक है। इसमें कहा गया है कि राज्य जनता के कमजोर तबकों और विशेष तौर पर अनुसूचित जातियों और जनजातियों के शैक्षणिक और आर्थिक हितों को विशेष ध्यान देते हुए प्रोत्साहित करेगा और सामाजिक अन्याय तथा शोषण के सभी दूसरे प्रकारों से उनकी रक्षा करेगा। दलितों के सामाजिक,आर्थिक व राजनीतिक विकास के लिए संविधान में आरक्षण व्यवस्थाएँ की गई थीं। लेकिन वर्तमान समय में हमारे नेताओं द्वारा आरक्षण शब्द की व्याख्या धड़ल्ले सी हो रही है। सामाजिक समरसता से दलितों के साथ खिचड़ी खाने का ढोंग किया जाता है। लेकिन यह सब एक दिखावा ही है।

रिश्वत तो आधुनिक समस्या नहीं है। यह भारत के प्रशासनिक तंत्र में रच बस गया है। सभी भ्रष्टाचार से त्रस्त हैं, लेकिन अवसर आने पर स्वयं भी रिश्वत लेने से नहीं चूकते। इस उपन्यास का नायक मनोहर रिश्वत लेने के लिए पूरी तरह इनकार करता है। रिश्वत को भ्रष्टाचार के रूप में चित्रित करके सुधीर कुमार को बताता है कि - "रिश्वत की कमाईवाली सीटों पर अधिकांश उच्च जातियों के लोग हैं क्योंकि ऊपर के अधिकारी भी उच्च जातियों के होते हैं,जो उच्च जातिय कार्मिकों के प्रति उदार और अपनापन रखते हैं। इस कारण कमाई वाली सीटों पर प्रायः उच्च जातीय कर्मचारियों को ही तैनात किया जाता है और उनको संरक्षण भी प्रदान किया जाता है। इस तरह रिश्वत का अधिकांश पैसा उच्च जातियों के पास जाता है। उच्च जातियों के लोग वैसे ही परंपरा से निम्न जातीय लोगों का सामाजिक -आर्थिक शोषण और दमन करते हैं। रिश्वत की इस अतिरिक्त मोटी कमाई से वे आर्थिक रूप से और अधिक समृद्ध हो जाते हैं और इसके दम पर आर्थिक रूप से कमजोर रहनेवाले दलितों का और अधिक शोषण करते है। 15सरकारी आफ़िसों में काम करनेवाले अधिकांश कर्मचारी भी सवर्ण हैं। कुछ क्षेत्रों में आरक्षण नहीं है तो दलित समाज के लोगों को सरकारी आफिस में काम करना मुश्किल हो जाता है। अब भी आफ़िसों में दलितों के शोषण कोई कमी नहीं है। नौकरी में कमाई के अवसर पर भी सवर्ण तो दलितों के ऊपर ही हैं। वे बिना डरकर पैसा मांगते हैं लोगों से ,क्योंकि ऊपर बैठनेवाले अपने अधिकारी हैं। वह उसका संरक्षण करेगा ।लेकिन दलितों के ऊपर कोई सहायता करनेवाला नहीं है। सरकारी आफ़िसों की ऊँच-नीच भेदभाव का चित्रण यह व्यक्त करता है कि "एक तो हमारे लोगों को ठीक ढंग की पोस्टिंग नहीं मिलती है

और जिनको ठीकठाक पोस्टिंग मिलती भी है,वे उतना खुलकर नहीं खेल पाते,जितने दूसरे खेलते हैं। हमसे कई-कई गुणा ज़्यादा कमाई है उनकी। हम हमेशा इनसे पीछे रहते हैं। और ये हमसे सदैव सम्पन्न रहते हैं।"[16] सवर्णों की कमाई के स्रोत वेतन से अलग भी मिलते हैं। लेकिन दलित को नौकरी से मिलनेवाली आमदनी ही एकमात्र स्रोत है। सरकारी लोग रिश्वत लेने के कारण उसका असर ज़्यादातर दलितों पर ही पड़ता है क्योंकि अन्य लोग देने की तरह देने के लिए दलितों के पास पैसा नहीं है। इसीलिए आवश्यक वस्तुओं से वंचित होना पड़ता है- रिश्वत की मार अंततः गरीबों पर ही पड़ती है,जो कि प्रायः हमारे समाज के ही लोग होते हैं। बिना रिश्वत दिए उनका कोई भी काम नहीं होगा। कोई गरीब व्यक्तिड्राईवर बनना चाहे और रिश्वत नहीं दे पाए तो उसे बार-बार टेस्ट में फेल कर दिया जाता है। उसका लाईसेनस नहीं बन पाता। गरीब बेरोजगारों के बीपीएल कार्ड नहीं बनते और उसके अभाव में वे मनरेगा के तहत सरकार द्वारा वर्ष में न्यूनतम 100 दिन का रोजगार प्राप्त करने से वंचित रह जाते हैं। इतना ही नहीं, रिश्वत के पैसा नहीं देने के लिए तो गरीब आदमी अपना राशनकार्ड तक नहीं बनवा सकता। राशनकार्ड के बिना उसे सस्ता राशन नहीं मिलता।"[17]भ्रष्टाचार और रिश्वतखोरी जैसी चीज़ें इतनी आम हो गई हैं कि हर कोई इसपर आंखें मूंद लेता है। नागरिक भी इसके लिए जिम्मेदार हैं,क्योंकि वे ही किसी न किसी रूप में रिश्वत देते हैं। इसका ज़्यादातर असर आर्थिक दमन सहनेवाले दलितों पर पड़ता है। पीसी एक्ट की धारा 7 के अनुसार कोई लोक सेवक होते हुए वैध पारिश्रमिक से भिन्न किसी प्रकार का कोई पारितोष या इनाम किसी व्यक्ति से प्राप्त करेगा या सहमत होगा वह लोक सेवक अपना कोई पदीय कार्य करे या करने से विरुद्ध रहे तो वह इस धारा के अंतर्गत दण्डनीय अपराध का दोषी है।

निष्कर्ष में कहा जा सकता है कि समकालीन दलित उपन्यासकारों ने अपने उपन्यासों में दलितों की दर्दनाक और शोचनीय सामाजिक स्थिति का वर्णन किया है। दलित साहित्य वास्तव में शोषित , उपेक्षित वर्ग के दर्द की संवेदना को यथार्थ रूप में अभिव्यक्तकरने की कोशिश करता है। जब तक दलित तथा सवर्ण खुले मन से सहयोग कर जीने केलिए तैयार होते हैं तब से हमारे भारत में परिवर्तन आने लगता है। उत्कोच उपन्यास इस सत्य को स्थापित करता है कि समाज में पिछड़े वर्गों में पैदा होने की वजह से दलितों को एक ही समाज में रहते हुए भी राजनीतिक रूप में अलगाव सहना पड रहा है। युगों-युगों से गुलामों की तरह ही जीनेवाले दलित आज भी पूरी तरह से उससे मुक्त नहीं हैं।जबकि प्रकृति ने किसी के साथ भेदभाव नहीं किया तो समाज में भेदभाव क्यों? जयप्रकाश कर्दम ने इस उपन्यास में विस्तार से एक आदर्शवादी युवक मनोहर के मानसिक और सामाजिक संघर्ष को दर्शाया है। साथ ही इसमें आरक्षण और उच्च स्तरों पर व्याप्त भ्रष्टाचार, जाति-व्यवस्था, जाति के आधार पर दफ्तरी माहौल में फैले भेदभाव, दलित मानवाधिकार आदि को भी बारीकी से उभारा है।

संदर्भ ग्रंथ

1. डॉ.मिथिलेश शर्मा - शोध समीक्षा और मूल्यांकन,पृ.44
2. अनीश भसीन - जानिए मानवाधिकारों को, पृ.185
3. डॉ.जयजयराम-मानवाधिकार, पृ 11
4. दलित चेतना और हिन्दी कथा साहित्य (लेख)समकालीन जनमत, ओमप्रकाश वाल्मीकि,पृ.50
5. जयप्रकाश कर्दम -उत्कोच, पृ .34
6. ओमप्रकाश वाल्मीकि -दलित साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र, पृ.65
7. डॉ.मधु चतुर्वेदी- मानवतावादी अवधारण,पृ.18
8. जयप्रकाश कर्दम-उत्कोच,पृ.63
9. जयप्रकाश कर्दमउत्कोच,पृ.80
10. जयप्रकाश कर्दमृउत्कोच,पृ.80
11. जयप्रकाश कर्दम-उत्कोच,पृ161
12. जयप्रकाश कर्दम- उत्कोच, पृ,.145
13. जयप्रकाश कर्दम- उत्कोच, पृ 53
14. जयप्रकाश कर्दम -उत्कोच, पृ.62
15. जयप्रकाश कर्दम- उत्कोच, पृ 121
16. जयप्रकाश कर्दम- उत्कोच, पृ.127
17. जयप्रकाश कर्दम- उत्कोच, पृ.129

शोधछात्रा
महाराजास कॉलेज
एरणाकुलम

'आकाश और धरती के कुंजी पर' उपन्यास में आधुनिक महिला एवं पुनर्जागरण

डॉ षमीना ए एस

सारांश: वर्तमान युग में नारियां मानवाधिकार और अस्मिता के लिए संघर्ष कर रही है। अब तक नारी की पहचान किसी की मां, पत्नी तथा पुत्री के रूप में रही है। लेकिन शिक्षा प्राप्त करने से अपनी अस्मिता की तलाश कर रही है। मलयालम उपन्यास में नारी अस्मिता के कई खूबसूरत रचनाएं हुई है, लेकिन बी. एम सुहरा की 'आकाश और धरती के कुंजी पर उपन्यास में जॉनक परम्बिल हुसैन हाजी की हवेली के अंदरूनी हिस्सों को छोड़ कर सार्वजनिक क्षेत्र तक चलने वाली शक्तिशाली महिला आवास नूर की परिवर्तन की सशक्त कहानी है।

बीज शब्द नारी वाद, वर्चस्ववादी, प्रतिरोध की आवाज, स्त्री शिक्षा

अपने स्वार्थ के साथ विस्तृत आकाश और अंतरिक्ष को अपने अधीन बनाने के लिए चाबियों का एक गुच्छा ढूंढ रहा है। उनके कमर में बंधे चाबियों के गुच्छे के बीच समाहित आवाज में सुंदरियों के निराशा एवं हताशा से भरे हृदय का निश्वास है। जब शराबी महलों में पुरुष महिलाओं के शरीरों से रात की रतालू को लय देकर अपने दोस्तों के साथ व्यस्त करता है तब सूर्य जीवन की व्यस्तता को नैरंतर्य देते हैं। ऐसे जमाने में भी महिला अपने जीवन की झंडे को फहराकर सदा दूसरों की सेवा करके अपनी ज़िंदगी निशब्द बिता देती हैं।

महिला जन्म, जिसने अपनी जिंदगी को बहन पत्नी बेटी और माँ जैसे निभिन्न स्तरों में कई लोगों के लिए बांट देती हैं और स्वयं जीना भूल जाते हैं। यह वह महिला है जो एक अच्छी पत्नी या एक अच्छी गृहणी जैसे ख्याति हासिल करने के लिए जीवन और जीवन की समस्याओं से लड़ रही है। वे अपनी भावनाओं और विचारों को दबाकर आँख और कान बाँधते हुए ससुराल में विकलांगता स्वीकारते हैं। इसके अलावा परिवार के सदस्यों की भलाई के लिए अपने मन की रोशनी एवं शारीरिक श्रम को त्याग देती है यही है आधुनिक महिला । बी.एम सुहरा की 'आकाश और धरती के कुंजी पर उपन्यास में जोनकपरम्बिल हुसैन हाजी की हवेली के अंदरूनी हिस्सों को छोड कर सार्वजनिक क्षेत्र तक चलने वाली शक्तिशाली महिला आवास 'नूरा' की परिवर्तन की कहानी है।

मलयालम उपन्यास के काल्पनिक युग में कई खूबसूरत रचनाएं हुई है। ऐसे असंख्य रचनाओं में सामाजिक विश्लेषण एवं आलोचनात्मक रचनाएं भी शामिल है। वी.टी. भट्टतिरिप्पाड, एम.आर.बि, प्रेम जी, अन्तर्जन आदि प्रमुखों ने ज़बान को तलवार बनाकर समाज के अन्याय के खिलाफ लड़ी। वे हमें यह भी दर्शाता है कि श्रेष्ठ नंबूदिरी पुरुष भी अन्य महिलाओं से तालुका रखते थे। विरोधाभास यह है कि फिर भी उन पुरुषों को प्रौढ माना जाता था ।

रेशमी शर्ट, सफेद सूट और सोने की घड़ी पहनने वाले पैंतालीस छियालीस वर्षीय हुसैन हाजी की तीन पत्नियाँ है ऐशा, नूरा, रमलत। शादी की उम होते ही अब्बा और अम्मी ने अपने बेटा हुसैन हाजी की शादी आयिशा से करवाई थी। आयिशा आज बीमार है। आयिशा को संतान न होने के कारण उसने दूसरी शादी कर ली। लेकिन दूसरी शादी में भी बच्चे नहीं थे। इसी बीच नूर से मुलाकात हुई। जब नूरा अपने दोस्तों के साथ कॉलेज से लौटते थे तब उसके हाव-भाव ने हाजियार को आकर्षित किया। उसीक्षण हाजियार ने लोगों को भेजकर शादी तय कर दी। नुरू की माँ को अपनी 18 साल की बेटी की शादी कराने में कोई खास दिलचस्पी नहीं थी। उनकी इच्छा बेटी को पढ़ा लिखा कर अफसर बनाने की थी। जब उसके पति ने हाजियार की आर्थिक स्थिति के बारे में बताया तब अपनी बेटी के सुखी जीवन की सपना देखते हुए उन्होंने शादी की इजाजत दे दी । बहुत जल्द ही नूरा हाजियार की पत्नी बन गई। हाजियार शादी के लिए जेवर, रेशम कपड़े खरीद कर उन्हें दे दिया । नुरु को कोई सुनहरे सपने या उम्मीदें नहीं थी क्योंकि

उनकी सुनने वाला कोई नहीं था। ए. सी कार में सवार करते हुए भी वह पसीने से भीगते थे रानी बनकर जॉनकपरम्बिल पहुंच गए। वहां की हवेली उन्हें सुनसान जैसा महसूस हुई। इतनी जड़ हो गई थी कि वह न हंस सकती थी न ही रो सकती थी। 'अपनी नियति समझ कर शांत रही ऐसे बड़ों के, खासकर नौकरों के कहने पर वह चुप हो गई। सब कुछ देखकर वह अनदेखा रही हाजी से झगड़ा नहीं किया। हाजि की पहली पत्नी आयिशा, दिल में अंधेरा भरा कर शरीर को त्यागने वाली है । उसकी आंसू देख कर नूर की दिल पिघल जाती है। आयशा नूरू से दुश्मनी रखती थी लेकिन न नूरू उन्हें नकारने को तैयार नहीं था। पूरा जायदाद आयशा के नाम पर होने के कारण हाज़ियार उन्हें बाहर नहीं कर सकते थे। तुम उसकी चिंता नहीं करना हाजियार नुरू से कहते थे। हाजीयार को अपनी पत्नियों से कोई लगाव या ईमानदारी नहीं थी। जिस दिन हाजीयार ने आयिशा पर मार पीट की थी उसी दिन नूरु जोनकपरम्ब छोड़कर अपने घर लौटे। घर पहुंचने के बाद ही उसे पता चलता है कि सब कुछ बदल गयी है, उसके जीवन की दिशा बदल गई है। हाजियार की उदार मदद से घर हरा भरा हो गया। उसका भाई एक अच्छा व्यवसायी बन गया घर में बुनियादी सुविधाएं होने के कारण उन्हें हाजियार से उलझना पसंद नहीं है। नूरु हाजियार के भेजी हुई कार में जोनकपरम्ब बांगला में इस एहसास के साथ लौटती है कि आज वह सिर्फ दूध देने वाली गाय है, चाहे जोनकपरम्ब स्वर्ग हो या नरक और हाजी के अलावा उसके लिए कोई दूसरा रक्षक नहीं है। उसे एहसास होता है कि कॉलेज के दिनों में उसके मन में जो नारीवादी विचारधारा थी वह अब प्रासंगिक नहीं है। 'सिद्धांत से पेट नहीं भरेंगे 'अपनी सहेली श्रीदेवी की बात नूरु को अधिक सोचने पर मजबूर किया।

जीवन के नए पाठ नूरु सीखने लगी। हाजियार, आयिशा को अनावश्यक दवाइॉयाँ देते हैं जिससे उसकी सोने की क्षमता कम होकर बिस्तर पर लेटने के लिए मजबूर करा देती है। हाजीयार के बुरी आदतों से प्रभावित न होनेवाले उनके मां-बाप ने अपनी पूरी जायदात अपनी बहू आयशा के नाम कर दी है। यह बात नुरू को बाद में पता चलता है। नुरू को पहले ही पता चलता है कि हाजियार के कारोबार उनकी पहली पत्नी आयिशा के हस्ताक्षरों के बिना नहीं कर सकता। इसलिए ही हाजी आयिशा को अपने साथ रखते हैं। लेकिन आयिशा हाजियार को जी जान से प्यार करती हैं। हाजियार के लिए नारी केवल एक खिलौना है, जो पुराने होने पर फेंक लें और नया खरीद लें। वह नारी से रिश्ता और शादी को इसी नज़र से देखते हैं। 'खुदा ने पुरुष को खुश करने के लिए ही महिलाओं को आकार के साथ बनाया है। नुरू को अफसोस इस बात पर है कि अभी तक किसी ने भी पाठ्याक्रम में इन सिद्धांतों को नहीं पढ़ाया था।

नारीवादी लेखन के सैॉद्धांतिक स्तरों के विश्लेषण करने योग्य 'आकाश और धरती के कुंजी पर' उपन्यास के नीरू जैसे एक पात्र के दिल से फूटने वाले लौ में नारी असमानता के प्रति प्रतिरोध घटित होती है। लेकिन क्या उसकी हरकतों से दुनिया की नजरिए बदल देगीॉं सामाजिक क्रांति में छोटी चीज जो समस्याएं पैदा करती है उन्हें हल्के में नहीं लिया जाना चाहिए। यहीं नहीं नारीवादी क्रांति माने Movment of women, by women, and for women है। Women's liberation movement का मतलब यह है कि महिलाओं द्वारा महिलाओं के अधिकारों और लैंगिक समानता, स्वतंत्रा और समान अवसरों का संरक्षण करना होता है। महिलाओं के प्रति समाज को पुरुष समाज के भेदभाव और अपकर्षता पूर्ण रवैयों पर सवाल उठाना चाहिए। पुरुषों का आर्थिक लाभ महिलाओं के जीवन को हाशिए पर धकेल देता है। नारीवादी विचारकों का मूल लक्ष्य सामाजिक संरचनाओं के ऐसे दृष्टिकोण पर सवाल उठाकर सामाजिक प्रतिरोध पैदा करना है। उस लक्ष्य को प्राप्त करने की कार्यवाही महिलाओं से परिवार और वहां से समुदाय की ओर प्रवाहित होनी चाहिए। नारी को नारी के लिए सोचने और उसके लिए कार्य करने की कार्यवाह तैयार रहना चाहिए। नूरु ने इसके लिए ही महिला प्रेसिडेंट का पद चुना थी। कल तक जिन लोगों ने हुसैन हाजी के बुरी आदतों को आंख बंद कर सहते थे आज उन पर सवाल उठाते हुए उनको अकेले खड़ा कर देता है। यदि महिलाओं पर इस तरह के महापुरुषों के निर्दय नजरों का पहरा न हो तो वह अपनी मर्जी के साथ जी सकती है और

गर्व से अपनी सहजीवी साथियों की समस्याओं को सुन सकते हैं । वहाँ न शीशे वाली स्नानघर, रेशम गॉद्दे वाला बिस्तर, शानदार भोजन, दास वृत्ति के लिए नौकर शायद नहीं होंगे, लेकिन उनके लिए एक स्वतंत्रता पूर्वक दुनिया होगी। इसलिए ही नुरु हुसैन हाजी की मजबूत हाथों को हटाकर आगे बढी ।

तुम्हें यहां से निकालने के लिए मुझे तीन शब्द काफी है। एक मुसलमान महिला की जिंदगी इन तीनों शब्दों में सिमटी हैं। एक बार इन तीनों शब्दों को बोल दिए जाए तो जीवन के सारे सुख और सुरक्षा से बाहर हो जाएगा । इस प्रकार महिलाओं को बाहर फेंकने से बचने के लिए कुछ चालाकी एवं सहनशीलता भी होनी चाहिए । जैसा कि रमला कहती हैं कि यदि स्त्री की चलाकि गलत हो जाती है तो आयशा दीदी की तरह हमें कोई पारिवारिक महत्व एवं धन संपत्ति नहीं रहेंगी। नुरू के जैसा शिक्षा एवं हिम्मत नहीं होंगें तो जीवन के रंगमंच में जो वेष पहना है उसे खेलकर खत्म करना ही एकमात्र मार्ग है। जिसने अपने जीवन में जो भी वेश पहने हैं उसमें जीकर उसी में मरना पड़ता है। रमलत की मानना है नारी वह होती है जो मौके के हिसाब से अपने वेश या रूप बदलें और रूप को आकर्षक बनाने में माहिर हो। बिना पति के दो बच्चे के साथ अपने भाई पर निर्भर रमलत का एकमात्र सहारा दूसरी शादी करना है। लेकिन गरीब बूढे को भी आज दहेज चाहिए। बिना पैसे से हुसैन हाजी की रिश्ता आई तो आलिकुट्टि भाई (दलाल) सलाह देते रहे 'एक या दो साल तक भी इसे चिपके रहेंगे तो भी तुम बच सकोगे । '

यह 'बचना' ही एक बड़ी समस्या है। अगर दो या तीन साल तक किसी के साथ अपना बिस्तर बाँटते और उनके सेवा करने के बाद किसी को जीवन भर के लिए अनाथालय में रहने वाले बच्चों को बोर्डिंग स्कूल की शिक्षा परिवार वालों के लिए अन्य लाभ मिल सकते हैं तो उस सौभाग्य को इंकार कोई क्यों करें इससे क्या खोना है ॅ रमलत जैसे महिलाओं को इस तरह के शरीर व्यापार के हिसाब किताब के बारे में नहीं पता। उनका एक मात्र सपना बिना भूख की जिंदगी है। वह नहीं जानते कि इससे परे जीवन को कैसे देखना है। संस्कृति, शिक्षा, समानता, मानवता, श्रेष्ठता गुलामीपन इस तरह के अनसुने शब्दों को न सुनने वाले समाज को तबाह कर देते हैं।

नूरू के अक्लमंदी के सामने फंसने वाले हाजीयार के लिए नूरु हमेशा एक कमजोरी है। हाजी ने नुरू को जब पहली बार उसकी सहेलियों के साथ हंसते खेलते देखा था, तब से उनके अंदर नरू को अपनाने की इच्छा जाग उठी थी। लेकिन अपनी तीसरी पत्नी के रूप में उसे शादी करने के बाद भी वह नरू को पर्याप्त रूप से अपनाने में असमर्थ रहे और यह उनका अंदरूनी प्रेम था जिसने नुरु को बाहरी दुनिया में जाने की अनुमति दी । छोटी लड़की से शादी करके उससे थोड़ी हमदर्दी हाजी ने दिखाने से ही सारी समस्या पैदा हुई थी यही सोचकर वह खुद को कोसते हैं।

भड़कीले कपड़े शरीर की सुंदरता को बढ़ाती इसी तरह विभिन्न नारी शरीर को पानेवाले के मन में भी विविधता बनता है। इस तरह की विविधता अपमानजनक है। हाजीयार में यह समझने की बुद्धि नहीं है। यदि पत्नी बच्चे को जन्म नहीं देती तो यह उनकी गलती है इस समस्या का समाधान पति का दूसरा विवाह करने में है। अगर पत्नी बीमार होती तो यह भी उसकी अपनी गलती होती है। नव वधू बनकर शरीर को बांट कर चैन से जीना, यही वर्चस्व स्वार्थ है। यह धरती से अवतरित नारी की पीड़ा से उपजे हुए प्रतिरोध का स्वर है। समाज के नियमों को अपने पक्ष में करने वाले धनी व्यक्तिपर लिखित या अलिखित कानून लागू नहीं होते हैं। उसे अपने कार्यों को उचित ठहराने का अधिकार हमेशा रहेगा। नूरू के ससुराल से चले जाना ऐसे अनुमानों को चकनाचूर कर देना है। हाजीयार, नूरू के सार्वजनिक कार्य को मिटाने के लिए महिला मंदिर को जलाने का फैसला करता है। नुरू को अवगत कराए बिना उसके गतिविधि के क्षेत्र को भस्म कर देना है। जो कुछ नुरू ने उधार लेकर और परिश्रम करके इकट्ठा किया है जो सब उसके पति के आदर्शों के आगे जल कर राख हो जाते है। यह सैकड़ों निराश्रित महिलाओं का आश्रय केंद्र है। उस कार्य केंद्र को हमेशा के लिए हजियार जलाना चाहते हैं। इस अवस्था में जब पति का प्यार कुंठित हो जाता है तो नूरू पागलों की तरह व्यवहार करने लगती हैं । नूरु की पागलपन का

कारण उसके मन में दबी हुई भावनाओं का विस्फोटन है। इस पागलपन की कोई औषधीय इलाज नहीं है बल्कि शांतिपूर्ण देखभाल से ही नूरू को अपने जीवन में वापस लाया जा सकता है। अंतरजनम के 'मूडपडम' के पात्र पापी की तुलना यहां नूरू से की जा सकती है। इस तरह के पागलपन की शुरुआत कहां से हुई हैं यह समझना अब आसान होगा। यानी जब 26 साल की 'पापी' को 65 साल के आदमी की चौथी पत्नी बनना पड़ा तो वह दुखद स्थिति से बाहर निकल कर पागल होने की दुःस्थिति में पहुंच गए।

अपने धर्म की रीति-रिवाजों का पालन करके जीवन की नाव को डूबने से बचा कर रखने की जिम्मेदारी पुरुषों की तरह महिलाओं को भी है। लेकिन वह जब वर्चस्ववादी या स्वार्थी हो जाती है तो मामूली कानून से बिगडते हैं। उसे नंबूतिरी या नायर या मुस्लमान के रूप में भेद नहीं किया जाना चाहिए । 'आसमान और धरती के कुंजी पर' उपन्यास एक मुस्लिम महिला जो समाज के आम महिलाओं के जीवन की कमियों की ओर इशारा करती हैं। लेखिका अपने उपन्यास के पात्र नुरू के ज़रिए समाज की निंदा नहीं बल्कि सामाज के कानून व्यवस्था को ताज़ा करते हैं। हम केरल के राजनीतिक, सामाजिक, साहित्यिक और सांस्कृतिक क्षेत्र में सशक्त हस्तक्षेप करनेवाली 18 वर्षीय मुस्लिम महिला पत्रकार श्रीमती हलीमा बीवी को आधुनिक महिला की सृष्टा मानते हैं।

स्त्री और पुरुष के लिए शिक्षा अनिवार्य है। और यह पुरुष का कर्तव्य है कि वह सामाजिक कार्य में भाग लेने वाले महिला को यथा संभव सहायता प्रदान करके उसका समर्थन करें। इन सभी कार्यो इसकी स्थापना करने वाले 'राष्ट्रीय आपदों के बारे में लोग बहुत चर्चा करते है। ऐसे जैसे 20 वीं सदी खत्म होने लगी तो दुनिया भर यह स्वीकारना पड़ा। पुरुष प्रधान सामाजिक व्यवस्था में महिलाओं को हाशिए पर रखें, यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है। इसलिए ही इतिहास के निर्माण में भले ही महिलाएं पुरुषों के साथ शामिल हो लेकिन यह पुरुष प्रधान इतिहास की पृष्ठभूमि में छिपा हुआ है। सामाजिक दमन जब सामाजिक परावर्तन का रास्ता खोलते हैं तो विरोध की आवाज बहुत शक्तिशाली होती है। लेकिन पुरु ष का अहं उसे सह नहीं सकता तो वह उग्र और हिंसक हो जाता है। इस तरह के अनुभव महिला को निराश करने के अलावा उसको पागलपन की और ले जाते हैं।

पार्वती नन्मेनि मंगलम वह महिला है जिन्होंने नंबूतिरी आभिजात्य वर्ग की कुरीतियों के खिलाफ प्रतिरोध की लौ जलाकर उन वर्ग को चुनौती दिया था। वह भी नंबूतिरी महिलाओं की दुर्दशा को समाप्त करने केलिए नम्बूतिरि समाज पर आवाज़ उठाई थी ।

आर्यापल्लम, पी के मेदिनी, देवकी निलयडोड, उमा अन्दर्जनम जैसे महिला कार्यकर्ताओं की ताकत के सामने घुटने टेखते समुदाय को, नम्बूतिरी महिला को एक आम व्यक्ति के रूप में जीने का अधिकार देना पड़ा । नंबूतिरी महिलाओं द्वारा फेंकी गई गुलामीपन के निशाने को दूसरे महिलाओं को अपनाने के लिए नहीं बल्कि उनको कुचल कर आगे बढ़ाने के लिए है। क्योंकि यह अधिकारों की राह दिलाते है कि अपनी आँखों पर पट्टी बांधकर अंधे होने का नाटक करने वाले बुजुर्ग लोगों के आकर्षण और भाषण को पहचानने के लिए रंलत जैसे औरत नहीं, बल्कि नुरू जैसे महिलाओं की ज़रूरत होती है यहाँ बी.एम सुहरा जोर शोर से यह घोषणा करने में सक्षम हुई है। केरल की महिला इतिहास का सार लिए सुहरा की 'आसमान और धरती की कुंजी पर' उपन्यास ऐतिहासिक प्रासंगिकता हाज़िल करती है। महिला- स्वतंत्रता मानव जाति की आधारशिला है।

सहायक ग्रंथ

1. गीता 1987 शीशे तोड़ते क्यों करंट बुक त्रिचूर
2. जयकृष्णनन (संपादक) 'फेमिनिज्म' 2002 केरला भाषा इंस्टीट्यूट तिरुवनंतपुरम
3. जान्सी जेमस्म (संपादक) 'फेमिनिज्म' केरला भाषा इंस्टीट्यूट तिरु वनंतपुरम
4. डॉ. लीला कुमारी एम 2008 स्त्री संकल्प मलयालम उपन्यास में डि सि बुक्स कोट्टयम
5. सजिता मडत्तिल 2000 मलयालम नाटक के नारी इतिहास डी.सी बुक्स कोट्टयम
6. सुहरा बी एम 2006 आकाश और धरती के कुंजी पर

प्रोविडन्स वुमन्स कॉलेज
कालिकट

भारतीय संस्कृति के अभिन्न अंग स्त्री द्वारा पर्यावरण शिक्षण : एक समीक्षात्मक अध्ययन

डॉ हसमुखलाल एल राठवा

सुबह सूरज को अर्घ्य देती, सांझ को तुलसी चौरे पर दीप जलाती, द्वार पर रंगोली सजाती, कुआं पूजती, पीपल के पेड़ पर कामनापूर्ति के लिए जल चढ़ाती तथा वटवृक्ष से अक्षय सुहाग मांगती हुई नारी, भारतीय संस्कृति में, हर कहीं पर्यावरण से जुड़ी है। आधुनिक शब्दावली में जिसे पर्यावरण (परिवेशिकी या इकोलोजी) कहा जाता है उसे भारतीय पारंपरिक शब्दावली में प्रकृति कहा जाता रहा है। पुरुष प्रकृति के सहयोग से ही तो सृष्टि की रचना करता है।

नारी भी प्रकृति ही है, वह सृजन करती है और अपने से संसार का संरक्षण भी। हमारे देश की संस्कृति, रवीन्द्रनाथ टैगोर के शब्दो में मूलतः अरण्यसंस्कृति रही है। यह अरण्यसंस्कृति हमारे प्राचीनतम ग्रंथों, वेदों से लेकर रामायण-महाभारत पुराणों व संस्कृत के बाद के काव्यों में निरन्तर प्रवाहमान रही है। भारतीय दृष्टि प्रकृति के शोषण की न होकर उसके संरक्षण और श्रद्धा की रही है। प्रकृति पर विजय पाने की धारणा तो पश्चिम की है। भारतीय दृष्टि में मनुष्य प्रकृति के साथ भारतीय-जन का यही रागात्मक पारस्परिक संबंध अरण्यसंस्कृति है। अपनी सृजनशीलता, कोमलता एवं भावुकता के कारण प्रकृति प्रेम नारी की स्वाभाविक प्रवृति के रूप में विकसित हुआ है।

तपोवन भारतीय संस्कृति के अविभाज्य अंग रहे हैं। हिरणों को अपने हाथों से जंगली धान खिलाती, गायों को थपथपाती, पेड़-पौधों को दया-स्नेह वश सींचती हुई वन-कन्याएँ हर तपोवन के वर्णनों में मिल जाएंगी। 'वनश्री', वनलक्ष्मी या वनदेवता की मनोहर कल्पना भी इसी संस्कृति की देन है। वनों तपोवनों का सात्विक, शांत एवं सुरम्य वातावरण मनुष्य को उस भाव भूमि पर पहुँचा देता है जहा चिरंतन आनंद ही आनंद है। इन आनंद के स्रोतों की रक्षा-भावना नारी में चिरकाल से विद्यमान रही है, यही कारण है कि कालिदास के कुमारसंभव की पार्वती तो छोटे-छोटे पौधों को स्नेहपूर्वक जल से सींच कर पुत्रवत बड़ा करती है और कार्तिकेय के जन्म के पश्चात भी इन वृक्षों के प्रति उसका वात्सल्य कम नहीं होता। कालिदास की शकुंतला का प्रकृति प्रेम तो इससे भी बढ़कर है। वह तो वृक्षों को सींचे बिना स्वयं जल पीना भी नहीं चाहती और शृंगार प्रिया होते हुए भी स्नेह के वशीभूत हो पेड़ों से फूल पत्ते तक नहीं तोड़ती। वह वृक्षों के पहले-पहल फूलने पर उत्सव मनाती है। प्रकृति भी निष्ठुर या अकृतज्ञ नहीं है। वह भी प्रेम का प्रतिदान देती है।

भारतीय संस्कृति में यज्ञ, पर्व या उत्सव सब प्रकृति नियमों में आबद्ध रहे है। प्रकृति की सानुकूलता को पाने के लिए उत्सव निरंतर मनाए जाते हैं। मनुष्य मात्र उत्सवप्रिय होता है, परन्तु महिलाएँ विशेष रूप से उत्साह एवं श्रद्धा से परिवार, समाज व संसार की भलाई के लिए सब कर्मकांड निवाहती रही है। ग्रामीण सस्कृति के उत्सवों व पर्वों में युगों-युगों से यह उल्लास आरक्षित रहा है। कुलदेवता हो, डीहदेवता हो या जनपद का देवता, सभी की पूजा नारी श्रद्धापूर्वक करती है। संभवतः जयशंकर प्रसाद ने इसीलिए नारी को केवल श्रद्धा कहा था। लोकजीवन में उत्सवों की अभिव्यक्ति छोटे-छोटे तीज त्यौहारों में अब भी देखी जा सकती है। एक मिट्टी के घड़े के ऊपर कसोरे में अक्षत, नये आम का पत्ता और उसपर जलता हुआ दीप प्रकृति के प्रति रागात्मक भाव की कितनी सुन्दर अभिव्यक्ति देता है। चावल-हल्दी के लेप से बनाए गए भित्तिचित्र जिनमें प्रकृति के अवयव चांद-तारे या पेड़ आदि ही अकेरे जाते हैं, नारी की कलाप्रियता के उद्‌गार है। किसी भी मांगलिक अवसर पर घर-आंगन में गेहूँ के आटे से चौक पूरना या पिसे चावल से अल्पना बनाना, वातावरण को कितना सजीव, सहृदय व सुकोमल बना देता है। प्राचीन उत्सवों में हमेशा प्रकृति के साथ नारी का एक अंतरंग संबंध ही अभिव्यक्त होता रहा है। तीज, गणगौर, करवाचौथ हो या अहोई अष्टमी

सब में प्रकृति के प्रति सहज स्नेहभावना के साथ-साथ परिवार के सदस्यों के लिए मंगल भावनाएँ जुड़ी हैं। लोकसंगीत, लोकगीत या लोक-नृत्य भी प्रकृति से जुड़े रहे हैं और नारी इन कलाओं के माध्यम से अपने आपको प्रकृति के संदर्भ में अभिव्यक्त करती है। यही कारण है कि प्राचीन काल में कोई भी यज्ञ या उत्सव नारी की उपस्थिति के बिना संपन्न ही नहीं हो सकता था। श्रीराम को सीता की अनुपस्थिति में सुवर्णमूर्ति बनवा कर यज्ञ संपन्न करना पड़ा था। वैदिक काल के नित्य-यज्ञ भी प्रकृति और पर्यावरण के क्षण-प्रतिक्षण सुंदर लगने वाले आयोमों के प्रति कृतज्ञता ज्ञापन के रूप में ही मनाए जाते थे। बाद के उत्सवों में हमेशा एक अंतरंग संबंध परिवेशिकी (इकोलाजी) का रहता था। वसंतपंचमी का रिश्ता सरसों के फूल और आम के बौर से था, तो विजयलक्ष्मी का खंजन व नीलकंठ की तलाश से नदी पोखर में स्नान करना, देवों के सान्निध्य में उल्लास मनाना। रंग-विरंगे वस्त्र पहनना व अच्छे-अच्छे व्यंजन बनाना- ये सब नारी की दिनचर्या के ही अंग रहे हैं।

वृक्षों में देवत्व की उद्‌भावना हमारी संस्कृति की बहुत बड़ी विशेषता रही है और महिलाओं ने इसे श्रद्धापूर्वक विकसित किया है। पंचवटी अर्थात पांच वृक्षों का समूह हमारे यहां बहुत पूज्य रहा है। पञ्चपल्लव, पंचाक्षरीवृक्षों का भारतीय संस्कृति एवं औषध उपयोग में महत्वपूर्ण है। ये पेड़ अपने औषधीय गुणों के कारण महत्वपूर्ण रहे, इसीलिए पूज्य बने। सदियों से नारी वट वृक्ष की पूजा कर अपने पति की सुख-समृद्धि की कामना करती आई है। पीपल की पूजा पेड़ों के प्रति श्रद्धा के प्रतीक हैं। ग्रामीण संस्कृति ही नहीं, नागरिक संस्कृति के विकास में भी वृक्षों का योगदान रहा है। अशोक दोहद् हो या दोलोत्सव, नगरकन्याएँ, महिलाएँ बहुत उत्साहपूर्वक इनमें भाग लेती रही हैं। वृक्षों के फूलों व पत्तों से शृंगार करना, देवपूजा में पुष्पांजलि अर्पित करना आदि कार्य प्रकृति प्रेम के ही प्रतीक हैं। राजाओं के प्रासादों में तो स्त्रियों के लिए प्रमदवन अलग से होता था जहाँ वे प्रकृति की निकटता पा सकती थीं।

प्रकृति के जिस संतुलन की बात प्रारंभ में की गई है वह आज गड़बड़ा गया है। कारण है बढ़ती हुई आबादी, औद्योगिकि क्रांति, 'विज्ञान के अनेक आविष्कारों ने भोगवाद की संस्कृति को जन्म दिया है। व्यक्ति की लोभ की प्रवृति ने प्रकृति के साधनों को अंधाधुंध दुहा आत्मकेन्द्रित मानव प्रकृति से होता है। पर्यावरण प्रदूषण की समस्या दिन-ब-दिन भयावह होती जा रही है। जल हो, वायु हो कुछ भी स्वच्छ नहीं रहा। तेज शोर मानसिक रूप से मनुष्य को विकलांग किए दे रहा है। ओजोन परत में छेद बढ़ता जा रहा है। धरती का तापमान बढ़ता जा रहा है। वृक्षों तथा वनों के विनाश तथा परमाणु ऊर्जा के युग में यो तो मानवमात्र पर उत्तरदायित्व है कि इस समस्या का समाधान करे पर परिवार व समाज की दूरी होने के कारण नारी का विशेष दायित्व है कि वह अपनी आने वाली संतति को अधिक हरीभरी धरती व स्वच्छ रमणीय परिवेश सौंपे। 'मातृत्व नारी की सबसे बड़ी विशेषता है पर फिनलैंड की (चार हजार) महिलाएँ जब शपथ लेती हैं कि वे तब तक गर्भधारण नहीं करेंगी जब तक सरकार परमाणु बिजली बनाने की नीति नहीं बदलती, तो हर संवेदनशील मनुष्य सोचने को मजबूर हो जाता है कि हमारी धरती के भविष्य का क्या होने वाला है उन अजन्मे शिशुओं की प्रार्थनाओं का जिन्हें इंग्लैंड के कवि लुई मैकनीस ने अपनी कविता में अभिव्यक्ति दी है यह कविता पर्यावरण का एक महत्वपूर्ण दस्तावेज है।

अतः पर्यावरण संरक्षण के कार्यक्रमों में भारत को नारी को केंद्र में रखकर ही चलना होगा। प्राचीन मूल्य बहुत बदल गये हैं, नारी घर से बाहर काम करने निकल कर दोहरे कर्तव्य का भार अपने नरम कंधों पर उठा रही है। पर तब भी पुरुष की अपेक्षा नारी ही पर्यावरण से अधिक जुड़ी है। अब भी उत्सव हो या घर-आंगन की छोटी-सी बगिया या वह भी न हो तो फ्लैट की बालकनी में सजाए दो चार गमलों की हरीतिमा सबका श्रेय नारी की जिजीविषा व उत्साह को है। इसी शदी के तीसरे शतक में हुई अमृतदेवी व उनकी तीन पुत्रियों को कौन भूल सकता है जिन्होंने जोधपुर जिले के खेजडली गांव में पेड़ों को कटने से बचाने के लिए अपने प्राण दे दिए। वे पेड़ों से चिपकी रहीं और राजा के कारिंदों ने कुल्हाड़ी से उनके सिर काट डाले। वनसंरक्षण और वृक्षारोपण के कार्यक्रमों में आज इसी प्रकार के त्याग व बलिदान की अपेक्षा है। जनसंख्या

नियंत्रण, जल तथा वायु व ध्वनि प्रदूषण को रोकने में भी भारतीय नारी सहयोग कर सकती है। बच्चों को जिम्मेदार नागरिक बनाने की प्रक्रिया में उन्हें पर्यावरण के प्रति संवेदनशील बनाने की शिक्षा भी मां के रूप में नारी को ही देनी है। कागज, पेंसिल कम खर्च हों इसलिए स्लेट या ब्लैकबोर्ड का प्रयोग हो, जल, बिजली का अपव्यय 'न हो, यह सब नारी की क्षमता से ही हो सकता है। इसके अतिरिक्त वह स्वयं भी खाना बनाने में सौर ऊर्जा का प्रयोग कर, शृंगारप्रियता के साधनों, चमड़े की वस्तुओं का प्रयोग कम करके भी पर्यावरण संरक्षण कर सकती है। यह तो हुई प्राकृतिक पर्यावरण की बात। पर्यावरण का फलक बहुत विस्तृत है। घर-परिवार, ग्राम, नगर सबकी परिस्थितियाँ हमारे जीवन को प्रभावित करती हैं। परिवारिक वातावरण के असंतुलन से भी अनेक शारीरिक एवं मानसिक रोगों का जन्म होता है। परिवार की महत्वपूर्ण इकाई है नारी। यदि अपनी सहनशीलता-दूरदर्शिता से वह परिवार को शान्त वातावरण दे पाती है तो पूरा समाज स्वस्थ होगा। संतुलित समाज ही पर्यावरण प्रदूषण को दूर कर इस पृथ्वी को रहने योग्य बना सकता है। प्रकृति का असंतुलन मनुष्य की लोभ की प्रवृतिवश ही होता है। यदि नारी निस्वार्थमय संतति को जन्म देती है तो धीरे-धीरे पर्यावरण सुखद होगा और मनुष्य को भविष्य में बेहतर जीवन मिल सकेगा।

सन्दर्भ ग्रंथ सूची

1. अभिज्ञान शाकुन्तलम् राघवभट्ट कृतटीका निर्णय सागर प्रेस, बम्बई। ऋतुसंहार, चौखम्बा संस्कृत सिरीज वाराणसी।
2. कुमारसम्भव, डा. सूर्यकान्त द्वारा सम्पादित साहित्य अकादमी, नई दिल्ली मालवाग्निमित्रम्, संस्कृत हिन्दी टीका सहित वाराणसी
3. मेघदूत, मोहनदेव पन्त कृत व्याख्यासहित
4. रघुवंश महाकाव्य, मल्लीनाथ टीका सहित, निर्णय सागर प्रेस, बम्बई। विक्रमोर्वशीय, साहित्य अकादमी नई दिल्ली

असिस्टेंट प्रोफेसर
अनुस्नातक शिक्षणशास्त्र भवन
सरदार पटेल विश्वविद्यालय
वल्लभ विद्यानगर आनंद

प्रश्नोत्तरी

डॉ. रंजीत रविशैलम

1. 'पत्तलि' नामक ग्रंथ के रचयिता कौन है?
2. उच्चरि सकत न संस्कृत पराकृत समर्थ्य।
   तिन लगि नन्द सुमति यथा, भाषि अनेका अर्थ्य। - किसकी पंक्तियाँ हैं?
3. 'हिंदी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास' किसका ग्रंथ है?
4. किसने 'कामायनी' को छायावाद का उपनिषद कहा है?
5. 'लोकायतन' महाकाव्य किसके जीवन पर केंद्रित रचना है?
6. 'चाँदनी के खण्डहर' किसका महत्वपूर्ण उपन्यास है?
7. डॉ नगेंद्र की किस कृति को हिंदी साहित्य अकादेमी पुरस्कार प्राप्त है?
8. 'प्रबुद्ध भारत' पत्रिका के महान संपादक कौन थे?
9. आलोचना के क्षेत्र में 'विरुद्धों का सामंजस्य' सिद्धांत का प्रवर्तन किसने किया?
10. निराला किसको 'हिंदी भूषण' नाम से संबोधित करते थे?
11. 'त्रिशंकु' हिंदी का आधुनिक युग में पहला, तेज, तुर्श और तल्ख नाटक है"- किसका कथन है?
12. कालिदास सच सच बतलाना/ इंदुमती के मृत्युशोक से अज रोया या तुम रोये थे-किसकी पंक्तियाँ हैं?
13. बिहारिनदास को किस संप्रदाय में 'गुरुदेव' नाम से पुकारा जाता है?
14. 'उक्ति धर्म विशालस्य/ राजनीति नवरसं/ खट भाषा पुराणं च/ कुरानं कथितं मया'-किस ग्रंथ की पंक्तियाँ हैं?
15. जैन रास परंपरा में रचित 'कच्छुली रास' का रचनाकार कौन है?
16. गुलाम नबी किस नाम से प्रसिद्ध रहे?
17. 'सखा प्यारे कृष्ण के गुलाम राधा रानी के'- किसकी प्रसिद्ध पंक्ति है?
18. गोगोल के नाटक 'इंस्पेक्टर जनरल' का हिंदी अनुवाद 'आला अफसर' नाम से किसने किया?
19. सहज कहानी आन्दोलन के प्रवर्तक कौन थे?
20. 'पागलट कुत्तों का मसीहा' उपन्यास का रचयिता कौन है? (उत्तर : पृष्ठ 48)

पेड़ तुम पेड़ नहीं नज्म अपनी नज़र में

प्रो (डॉ) मनु

पेड़ तुम पेड़ नहीं

तुम दरजी (1)

पेड़ पेड़ ही होता है और दरजी दरजी ही होता है। बच्चो ! तभी हमारे दिल/ज़हन में यह संदेह/शक पैदा होता है कि क्यों कवि/शात्र ने ऐसा कहा है?

गधा गधा ही होता है और इंसान इंसान ही होता है। बच्चो ! क्यों हमारे समाज में इंसान को कभी कभार लोग गधा पुकारते हैं? ज़रूर ही इसके पीछे कोई न कोई वज़ह होगा। इंसान को गधा पुकारने की वज़ह हम सब जानते हैं। (यह मैं यहाँ दुहराना चाहता हूँ।)

(एक गधा अपनी पीठ पर नमक की बोरी ले के जा रहा था, एक पुल पार करते वक़्त वह नीचे गिरा। वैसे ही गधा कुछ देर तक पानी में ही लेटता रहा। थोड़ी देर बाद वो उठ कर चलने लगा तो गधे को लगा कि बोरी का वज़न बहुत कम हुआ है। दूसरे दिन गधा उनकी बोरी ले कर आ रहा था। पुल पे आते ही उसे कल की बात याद आयी। वह जान बूझ कर पानी में कूदा। कुछ देर पानी में लेटा। फिर उठ कर चलने लगा तो गधे को लगा कि बोरी का वज़न बहुत कुछ बढ़ गया है। इसमें अक़्ल की जो बात है, उसके आधार पर ही हम इंसान को कभी कभार गधा पुकारते हैं।)

बच्चो ! तब तुम सोचोगे क्यों सुशील शुक्ल ने पेड़ की तुलना दर्जी से की है, क्योंकि पेड़ और दरजी दोनों रचनात्मक सरगर्मियाँ करने में कामयाब हैं। दरजी सिल कर समाज की सेवा करता है। पेड़ भी वही करता है। पेड़ और दर्जी दोनों रचनात्मक कार्य करते हैं।

इंसान के जिस्म (शरीर) को बचाने के लिए दर्जी कपड़ा बुनता है और इंसान को सांस ले के जीने के लिए पेड़ हवा को साफ़ करता है। इसलिए कवि/शाइर ने पेड़ की तुलना दरजी से की है। पेड़ कई गुना रचनात्मक कार्य दुनिया के लिए करता है। रचनात्मकता की बात में यहाँ समानता दिखायी गयी है।

(शायर ने क्यों पेड़ की तुलना दरजी से की है?)

मानवीकरण (Personification of nature) छायावादी दौर का एक ख़ास रुझान (विशेष प्रवृत्ति/special trend) है। वह आज के दौर में भी राइज (अरबी/पुल्लिंग, जो चलता है) है, और जब तक साहित्य/अदब (अरबी पुल्लिंग) मौजूद रहेगा तब तक वो राइज रहेगा। यहाँ कवि सुशील शुक्ल ने पेड़ का मानवीकरण दर्ज़ी से किया है। पेड़ हिन्दी का अपना शब्द है, इसका अर्थ है वृक्ष, यह संस्कृत शब्द है, इसका दूसरा शब्द (दीगर लफ्ज़) है दरख़्त। वह फ़ारसी पुल्लिंग लफ़्ज़ है।

तुम ने कितने सिले घोंसले/कितनी सिलीं हवाएँ /धूप सिली तो बिखर गई /कतरन कतरन छायाएँ/पेड़ तुम पेड़ नहीं/तुम दर्जी

शाइर पेड़ का संबोधन 'तुम' सर्वनाम से कहकर बराबरी का रिश्ता कायम रखना चाहते हैं। कवी/शाइर आगे पेड़ से पूछता है कि तुमने कितने घोंसले सिले हैं? घोंसले के मामले में बहुत बड़ा अंदाज़ा लगाया जा सकता है। चिड़िया घोंसले का निर्माण/तामीर तब करता है जब अपनी पीढ़ी को आगे बनाये रखने का मंशा (इरादा/उम्मीद) दिल में उग जाता है। सिलना और सीलना इन दोनों शब्दों का फ़र्क़ कभी भूलना मत। दोनों शब्द हिंदी हैं, दोनों का मतलब अलग अलग है। सिलने का मायना बुनना है तो सीलने का मायना नमी की वजह ठंडा होकर बदसूरत बन जाना है। सिलना सकर्मक क्रिया है तो सीलना अकर्मका क्रिया है।

तुम ने कितने घोंसले सिले। यह नस्री जुमला है (यह गद्य का वाक्य है)। इसकी काव्यात्मक पंक्ति है(इसकी शाइराना सतर है) तुमने कितने सिले घोंसले।घोंसले के लिए मामूली तौर पर नीड और पिंजरा आदि अर्थ दिया जाता है । मगर 'घोंसला और पिंजरा' में बहुत बड़ा फ़र्क़ है। घोंसला परिंदों के लिए परिंदों से बनाया जाने वाला घर है तो पिंजरा इंसान के ज़रिए परिंदों के लिए बनाया जाने वाला घर है। (ऑडियो में नीड बताया था उसकी जगह पिंजरा बताना था)

पेड़ ने कितनी हवाएँ सिलीं हैं। पेड़ के पत्ते पत्तियाँ जब हिलने लगते हैं तब हमें लगता है कि पेड़ हवाएँ सिल रहा है। वैसे ही एक ही दिन में ही पेड़ कितनी ही कितनी हवाएँ सिलता रहता है। साथ ही साथ पेड़ ने धूप भी सिली है। दर्ज़ी जब कपड़ा सिलने के लिए लिबास कतरता है तब कपडा छोटे बड़े टुकड़ों में बिखेर जाता है। मगर वो धूप बिखेर गयी है, फ़ैल गयी है; यहाँ भी मानवीकरण का रुझान देख सकते हैं। छायाएँ बिखेरना का मतलब है दर्जी कपडा कतरते (कतरन : हिन्दी स्त्रीलिंग शब्द) वक़्त वो छोटे बड़े टुकड़ों में टूट जाता है। यहाँ प्रकृति की खूबसूरत तस्वीर शाइर ने खींच ली है। कतरन कतरन छायाओं का अर्थ है बादलों के छोटे बड़े टुकड़े की परछाईयाँ पेड़ पर पड़ना। 'सूरज का नूर (प्रकाश) बादलों पर पड़ने पर पेड़ पर छायाएँ बिखेर जाती है । यह खूबसूरत मंज़र है (दृश्य) कतरन कतरन छायाएँ का दूसरा मंज़र यह है कि जब पेड़ धूप सिलने लगता है तब पेड़ के नीचे छोटी बड़ी परछाइयाँ दिखाई देंगी। पेड़ की धूप सिलने की वज़ह से ही पेड़ के नीचे छोटी बड़ी परछाईयाँ नज़र आती हैं। यह मंज़र ज़रूर ही खूब खूबसूरत है।

मिट्टी सिलकर रंग बनाए/पानी सिल आकाश/मिट्टी रंग हवा पानी को /जोड़ दिया तराश /पेड़ तुम पेड़ नहीं / तुम दर्जी

मिट्टी सिलकर रंग बनाए, हिंदी में एक कहावत है 'रंग मिट्टी करना' का अर्थ है चमक खत्म हो जाना। लेकिन यहां पेड़ मिट्टी को रंग देता है, अपने भूरे पत्ते मिट्टी से मिल कर वह उपजाउं का रंग हासिल कर देती है। मिट्टी को चमक मिलने का कारण, उपजाउ बनने का सबब पेड़ है।

'पानी सिल आकाश' इसमें नपे तुले चुनिंदा शब्दों में बहुत बड़े इल्मी या वैज्ञानिक बातों को शाइर ने पिरो लिया है, ताना बाना बनाया है, सजा दिया है। पेड़ ने पानी सिला कर आकाश बनाया। वाष्पोत्सर्जन और केशिका आदि क्रियाओं का इस्तेमाल करके पेड़ पानी को ज़मीन से ऊपर आसमान तक पहुँचा देता है। पेड़ अपनी जड़ों से पानी को सोखता हैं, जो फिर तने (तना पेड़ का अहम् हिस्सा है,जो ज़मीन से उपर उठकर पेड़ के उपरी हिस्से को सहारा देता है) और टहनियों व शाखाओं से होकर पत्ते पत्तियों तक पहुँचता है। पत्ते पत्तियों में, पानी वाष्पोत्सर्जन के ज़रिए वाष्प के रूप में छोड़ दिया जाता है, वो बादलों का निर्माण कर देता है। वैसे ही आसमान बादलों से भरा हुआ दिखाई देता है। सिलने में पेड़ का सबसे अहम् व सख़्त फ़न 'पानी सिल आकाश' है। शाइर सुशील शुक्ल ने जितने ही जितने पेड़ों की सिलाई का बयां किया है, उसमें सबसे मशहूर, सबसे सख़्त , सबसे फायदेमंद फ़न उनका 'पानी सिल आकाश' है, यह मेरे लिए बेमिसाल है, अनुपम है।

यह पढ़नेवालों के दिल में सारी इल्मी या वैज्ञानिक सरगर्मियाँ एक एक करके गुज़र जाएंगी। जैसे कि पानी का अवशोषणन (Water Absorption) (2)यह सिलने की पहली सीढ़ी है। पेड़ ज़मीन में मौजूदा पानी को अपनी जड़ों के ज़रिए जज़्ब (अवशोषण /सोख /खिंचाव) कर देता है, यह पेड़ों के लिए सूखे इलाक़ों में दूभर (कठिन) काम है। इसके बाद ज़ाइलम (Xylem) (3) की बात आ जाती है। जब एक बार पानी जड़ में दाखिल हो जाता है तो यह पेड़ की लकड़ी में ज़ाइलम नामक (चौंकी/पोंगा) के ज़रिए सफर करता है। ज़ाइलम एक ख़ास क़िस्म की उतक (तंतु) है वह पानी और गैसाई (पोषक) चीज़ों को उपर की तरफ ले जाती है। अगली बात वाष्पोत्सर्जन की है। पत्ते पत्तियों से पानी वाष्पोत्सर्जन (Transpiration) (4) नामक प्रकिया के माध्यम के तौर पर छोड़ा जाता है। (पत्ते पत्तियों से पानी ट्रांस्पिरेशन के तौर पर एक अमल के जारिए छोड़ा जाता है) यह अमल पानी को उपर की तरफ खींच लेता है। केशिका क्रिया (Capillary action) (5) के सहारे भरपूर पानी उपरी सतह पे फ़ैल जाती है , यह कोई देख नहीं पायेगा, यही इल्मी करिश्मा है। वाष्पीकरण (Evaporation) (6)और वाष्पोत्सर्जन (Transpiration) के ज़रिए पेड़ जलवाष्प को हवा में छोड़ता है जो बादलों का निर्माण करता है, और आख़िर बारिश के तौर पर ज़मीन पे वापस आते हैं। सूरज सतही पानी को सोख्ता है तो पेड़ ज़मीन तह के पानी को सोखता है।

दुनिया, जल, वायु, अग्नि, पृथ्वी और आकाश आदि पंच भूत तत्वों से बनायी गयी है। मिट्टी रंग हवा पानी को जोड़ दिया तराश का भावार्थ यह हो सकता है कि प्रकृति के तत्वों का मेल। कवि कह रहा है कि मिट्टी, हवा, पानी जैसे प्रकृतिक तत्वों को जोड़कर कुछ नया बनाया जा सकता है। यहाँ तराश शब्द का अर्थ हो सकता है कि इन तत्वों को आकार देकर कुछ नया रूप देना। इसमें सृजन की बात

मौजूद है। इसमें जीवन की विविधता दर्शायी गयी है। जीवन में विभिन्न तत्वों का मेल बहुत ही ज़रूरी है।

कितने सिले किनारे/कितनी सिलीं ज़मीनें/रंग महक की हुई सिलाई/फूल सिले पश्मीने/पेड़ तुम पेड़ नहीं /तुम दर्जी।

कितने सिले किनारे और कितनी सिलीं ज़मीन। पेड़ बारिश में ज़मीन/मिट्टी को न बहने देकर किनारे का ताना बाना सिला देता है और ज़मीन को मज़बूत बना देता है। रंग महक की हुई सिलाई का मतलब यह है कि रंग और महक एक भावनात्मक जुड़ाव है। पश्मीना शब्द फारसी का पश्म से आया है इसका मतलब है ऊन। यह शॉल, स्कफ, स्टॉल आदि परिधान बनाने के लिए इस्तेमाल किया जाता है। यह बहुत ही खूबसूरत और आरामदायक है, इसकी गुणवत्ता अधिक है इसकी मांग भी। रंग और महक की सिलाई हुई से मालूम हो जाता है कि जुड़ाव खूबसूरती और आकर्षण के लिए होता है, न बदसूरती के लिए। रंग और महक दोनों ही हमारे मन और भावनाओं को प्रभावित करते हैं। इसमें मानवीय रिश्ते का भी आरोप लगाया जा सकता है।

आम में आम के स्वाद सिले हैं /जामुन में जामुन के /बाग़ में बाग़ के स्वाद सिले हैं /वन के पेड़ में वन के / पेड़ तुम पेड़ नहीं /तुम दरजी।

आम में आम का स्वाद सिला है जामुन में जामुन का। प्रकृति जिसको मिलाना चाहती है उसे ठीक तौर पर मिलाती हैं। लेकिन मानवीय जुड़ाव पूरी तरह सही नहीं दिखाई देता है । जामुन गर्म देश में होनेवाला सदा बहार पेड़ का फल है। इसे ब्लैक प्लम कहते है। यह बहुत ही स्वादिष्ठ है । प्रकृति सही चीज़ों को मिलती है।

कुल मिलाकर, यह कविता रचनात्मकता और सृजन की प्रक्रिया को भी दर्शा सकती है। यहाँ कलाकार या शिल्पकार अपनी कुशलता और रचनात्मकता से कुछ सुंदर और आकर्षक चीज़ें बना देते हैं। इनमें प्रकृति की अपनी विशिष्टता है।

यह कविता रचनात्मकता की ओर इशारा करती है। सिला देना का मतलब जुड़ाव है। दर्जी जोड़ता है वैसे ही पेड़ भी जोड़ने का रचनात्मक कार्य करता है।

शायर को भी जोड़ने का रचनात्मक सरगर्मियों में लगे हुए दिखाई देता है। जुबां से चुने हुए लफ़्ज़ों को आधे पौने लफ़्ज़ों में नाप तोल कर जुड़ा जुड़ा के सजा सजा के जब कोई इज़हार ख़्याल करते है तो एक बिंब, एक तस्वीर, एक प्रतीक क़ारी (पाठक) के दिलो दिमाग में उभर आता है। दरजी जोड़ता है , पेड़ जोड़ता है शाइर जोड़ता है। जुलाहा ताना बाना बुनता है , दरजी इससे नयी खूबसूरती लिबास बना देता है।

पेड़ ने हमारे दिल में जो बिम्ब उकेर दिया है, उसकी तस्वीर यों खींचा जा सकता है। घोंसले सिले से परिंदों व उनके बच्चों का खूब सूरत मंज़र मिल जाता है, सिलीं हवाएँ से पेड़ के पत्ते पत्तियों के हिलने का सुहाना का मंज़र, धूप सिली से पेड़ पर पड़ने वाले नूर ए सूरज (सूरज का नूर) से पेड़ के नीचे दिखाई देने वाली छोटी बड़ी परछाईयों का मंज़र। मगर मेरे लिए ज़हन छूने वाला जुमला 'पानी सिल आकाश' है, मगर यह बच्चों के लिए सरगर्मियों की तरह नहीं दिया गया है, जो भी हो यह मेरा पसंदीदा पांच हुरूफ़ी (अक्षर) ख्याल है मगर वो आधे-पौने का जुमला है या आधा टुकड़ा जुमला है; क्योंकि इसे वज़ाहत (साफ़ ज़ाहिर) करने के लिए काफ़ी मेहनत करनी पड़ती है; क्योंकि इसे पढ़ने पढ़ाने वालों को पानी का अवशोषण, ज़ाइलम, वाष्पोत्सर्जन, केशिका क्रिया और बारिश की बातों को बताना व समझाना पड़ता है।

इसलिए /पेड़ तुम पेड़ नहीं //तुम शाइर हो /ऐसा ही मझे लगता है।

डॉ मनु के अनुसार इस कविता का सन्देश है 'पेड़ जोड़ता है कभी तोड़ता नहीं'। पेड़ जोड़ता है, दरजी जोड़ने के लिए काटता है, फिर जोड़ता है। शाइर जोड़ने के लिए ही जुड़ जाता है। जुबां व नज़्म यानी भाषा एवं कविता हमें हमेशा जुड़ा देती हैं ।

शब्द भण्डार की नज़र से पेड़ कविता

पेड़ (पुल्लिंग, यह संस्कृत भाषा के 'पिण्ड' का अपभ्रंश रूप है। यह हिन्दी और उर्दू दोनों में प्रयुक्त होता है। यह तद्भव रूप है), दर्जी (बदले लफ्ज़ है, यानी उर्दू से बदलाव के साथ हिंदी में प्रयुक्त लफ़्ज़ उर्दू में इसे दर्ज़ी कहते हैं यह पुल्लिंग है, फ़ारसी जुबां के दरज़न से यह आया है, जिसका अर्थ है सिलाई करना), घोंसला (पुल्लिंग, यह

संस्कृत से आया शब्द है), हवा (यह स्त्रीलिंग अरबी लफ्ज़ है), धूप (स्त्रीलिंग/संस्कृत), कतरन (स्त्रीलिंग/हिन्दी), छाया (स्त्रीलिंग/ संस्कृत), मिट्टी (स्त्रीलिंग/ संस्कृत तद्भव), रंग (पुल्लिंग/फ़ारसी) पानी (पुल्लिंग/संस्कृत तद्भव) आकाश (पुल्लिंग/संस्कृत), तराश (स्त्रीलिंग/ फारसी), किनारा (पुल्लिंग/ फारसी), ज़मीन (स्त्रीलिंग/ फ़ारसी), महक (स्त्रीलिंग/फ़ारसी), फूल (पुल्लिंग/संस्कृत तद्भव), पश्मीना (पुल्लिंग/ फ़ारसी), आम(पुल्लिंग/संस्कृत तद्भव/आम्र), स्वाद (पुल्लिंग/संस्कृत), जामुन (पुल्लिंग संस्कृत तद्भव/जम्बुक), बाग़ (पुल्लिंग/फ़ारसी), वन (पुल्लिंग/संस्कृत)। (7) शब्द भण्डार की नज़र से यह एक संस्कृतनिष्ठ रचना है।

पेड़ नज़्म का भाषा पक्ष

इस नज़्म के सृजन के लिए सुशील शुक्ल ने सिर्फ निन्यानब्बे पदों का इस्तेमाल किया है। इनमें दो पंक्तियाँ चार मर्तबा दुहरायी गयी हैं , यानी चौबीस पद। नज़्म/ कविता में दुहराव / पुनरावृत्ति क्या है? कविता में पुनरावृत्ति एक तहरीरी (लेखन) तकनीक है, जिसमें मुख़्तलिफ़ क़िस्म (विभिन्न प्रकार) की पुनरावृत्ति शामिल होती है, जिसमें ख़ास लफ़्ज़ों का बार-बार इस्तेमाल, हर सत्तर की शुरूआत में किसी लफ़्ज़ का दुबारा नमूदार होना (पुनः प्रकट होना) या कविता में बाद में किसी पिछले ख़्याल का पुनः आना शामिल है।

पेड़ तुम पेड़ नहीं / तुम दर्जी में पुनरावृति दिखाई देती है ।

कविता के सृजन के वक़्त इस्तेमाल की जानेवाली संज्ञाओं के हिसाब के मुताबिक़ कविता की भाषा स्त्री पक्षीय भाषा है या पुरुष पक्षीय भाषा है यह तय करने का तरीक़ा पहली बार प्रो (डॉ) मनु ने मुस्तैद कर दिया है। यह ऐसी भाषाओं के लिए ही लागू कर करता है कि जिन भाषाओं में लिंग दो ही हो। भाषा में पुरुष का अधिकार यानी पुरुष वर्चस्व भाषा के खिलाफ स्त्री पक्षीय भाषा का सृजन भी संभव है , कविता में इस्तेमाल की गयी संज्ञाओं की तादाद के मुताबिक़ जुबां की मिज़ाज तलाशने की बात डॉ मनु ने अपने लेख में पेश की है। लेख में यह जताया है कि कविता के सृजन में स्त्रीलिंग लफ़्ज़ों का इस्तेमाल ज़्यादा है वो स्त्री पक्षीय भाषा है दीगर लफ्ज़ में उसे स्त्रैण भाषा भी कह सकते हैं। अंग्रेजी भाषा में इसे Gynocentric Language पुकारा जा सकता है यानी स्त्री केन्द्रित भाषा। अगर सृजन की वेला में पुल्लिंग शब्दों का इस्तेमाल ज़्यादा हो जाए तो वो पुरु ष पक्षीय भाषा बन जाएगी , दीगर लफ्ज़ में पुरुष वर्चस्व की भाषा भी कह सकते हैं , अंग्रेजी में इसे Androcentric language पुकारा जा सकता है यानी पुरुष केंद्रित भाषा। उर्दू में इसे क्रमशः जुबां ए औरत और जुबां ए मर्द नाम दिए जा सकते हैं।

(लेख प्रो डॉ मनु : ज़ुबाने औरत)

इस नज़र से बिना कोई शक से यह कह सकते हैं कि सुशील शुक्ल ने इसमें ज़बान ए मर्द का इस्तेमाल किया है। दीगर शब्दों में कहा जा तो पेड़ नज़्म की जुबान Androcentric language है। इस कविता के सृजन के लिए शाइर 22 संज्ञाओं का इस्तेमाल किया है। इसमें चौदह संज्ञाएँ पुल्लिंग हैं और आठ संज्ञाएँ स्त्रीलिंग है। इसलिए भाषा की दृष्टि से इसमें पुरु ष पक्षीय भाषा (Androcentric language) का इस्तेमाल हुआ है। यह मुक्तछंद में लिखा गया है।

संदर्भ

1 https://www.amarujala.com/kavya/mere-alfaz/mithun-kumar-paugdha-tama-paugdha-naha-ha-2025-05-17

2 https://en.wikipedia.org/wiki/Absorption_of_water

3 https://en.wikipedia.org/wiki/Xylem (xylem के इस मबलब की वजह से केरल की एक शैक्षणिक संस्था ने अपने लिए यह नाम रखा है)

4. https://en.wikipedia.org/wiki/Transpiration

5. https://en.wikipedia.org/wiki/Capillary_action

6. https://en.wikipedia.org/wiki/Evaporation

7. https://www.rekhta.org/urdudictionary.keyword

विभागाध्यक्ष
केरल केंद्रीय विश्वविध्यालय
पेरिया, कासरगोड़

आत्मकथा

देवयानम्

अनुवाद : प्रो. के.एन.ओमना

मूल : डॉ.वी.एस. शर्मा

पंद्रहवाँ देवपद - बंधुर तिरुवनंतपुरम

(पूर्वप्रकाशित से आगे)

मैं तीन वर्ष तक स्वाति तिरुनाल संगीत सभा के प्रबंध समिति का अंग था। श्री स्वाति तिरुनाल के बारे में सभा में मेरा प्रथम भाषण 1988 को था। उसके बाद कई बार मैंने उनके बारे में स्मारक भाषण दिया था। इसके अलावा विभिन्न समारोहों में अनेकानेक भाषण मैंने दिया था। उनकी एक छोटी सी सूचना देना अब अनुचित नहीं समझता हूँ। वह इस प्रकार है - 1978 को नई दिल्ली के नरतत्वीय विज्ञान संबंधी सम्मेलन का भाषण; 1987 को किल्लिक्कुरिश्शि मंगलम के समारोह में कुंचन स्मारक भाषण, शुकपुरम गाँव में श्री एऱक्करा रामन नंपूतिरी स्मारक भाषण; 'ऐतिह्यमाला' के रचयिता श्री कोट्टारत्तिल शंकुण्णि के बारे में भाषण; 1988 को कालटी नामक गाँव में श्री आगमानंद स्वामी के बारे में भाषण; चेंगनाश्शेरी में श्री.ए.के.चाक्को के बारे में भाषण; 1995 को केन्द्र संगीत नाटक अकादमी के तत्वावधान में हुए कूटियाट्टम समारोह का भाषण; 1999 को मुंबई के नलंदा डान्स अकादमी में शास्त्रीय नृत्य के बारे में भाषण आदि अनगिनत बहुमूल्य विषयों पर आधारित प्रामाणिक भाषण विद्वानों के समारोहों में मैंने दिए थे। 2006 अगस्त को केरल हिंदी प्रचार सभा ने मुझे "साहित्य कलानिधि" उपाधि देकर आदृत किया था। कालटी के शैक्षणिक संस्थाओं में श्री शंकराचार्य की जिंदगी एवं कृतियों पर मैंने अनेक भाषण दिए थे। कालटी के श्री शंकरा डान्स अकादमी के तत्वावधान में जो दस दिन की संगीत शास्त्र कार्यशाला हुई थी उसका मैं निर्देशक था।

1996 को मद्रास म्यूसिक अकादमी की सभा में मेरा एक भाषण था। उसका विषय था "संगीत एवं साहित्य के क्षेत्र में तिरुवितांकूर राजवंश की देन।" श्री टी एस पार्थसारथी अकादमी की प्रबंध समिति के अंग थे। वे तो बडे विख्यात पंडित और संगीत प्रिय थे। उनके साथ मेरी गहरी दोस्ती थी। मैं कभी उन्हें भूल नहीं सकता और भी कुछ विशिष्ट व्यक्तित्वों के साथ मेरा अटूट हार्दिक संबंध था; उन्हें भी अब मैं स्मरण करता हूँ। वे थे चेन्नै के अडयार कलाक्षेत्र के स्थापक एवं सर्वप्रथम निर्देशक श्रीमती रुक्मणी देवी अरुण्डेल; वहाँ के पुस्तकालय के संचालक डॉ के कुंजुण्णि राजा; प्रोफसर एवं डॉ श्रीकृष्ण शर्मा; डॉ के वी शर्मा; मद्रास विश्वविद्यालय के मलयालम विभाग के अध्यक्ष डॉ एस के नायर; प्रतिभा संपन्न श्री एम गोविंदन; मद्रास के श्रीरामकृष्ण आश्रम के स्वामी ब्रह्मेशानंद स्वामी तथा अध्यक्ष श्री तपस्यानंद स्वामी इत्यादि।

प्राचीन काल से लेकर तमिलनाडु से बहुत से पंडित, वैज्ञानिक और कवि-गण तिरुवनंतपुरम में आकर रहते थे। उनमें तमिल-भाषी ब्राह्मण लोग ही अधिकांश थे। उनमें कुछ लोग महाराजा के दरबार के अंग बन गए थे तो कुछ और लोग नौकरी पाकर जीवन-यापन करते थे। महान पंडित एवं महाकवि श्री 'गोमति दासा' एलत्तूर रामस्वामी शास्त्री भी इस प्रकार तमिलनाडु से यहाँ आये थे और बाद में वे तिरुवितांकूर राजवंश के महाराजाओं के आदरणीय गुरु के पद पर प्रतिष्ठित हो गए थे। उन्होंने संस्कृत तथा मलयालम दोनों भाषाओं में अनेक रचनाएँ की थीं; परंतु वे सब अनुपलब्ध थीं। उनके पौत्र श्री आर वै नारायण ने कठिन प्रयत्न कर अपने पितामह की कुछ कृतियों को प्रकाशित किया था। उनमें प्रमुख थे वृत्तरत्नावली, सुरूपराघवं, पद्य कुसुमांजलि, सेलेक्टड वर्क्स ऑफ एलत्तूर रामस्वामी शास्त्री (selected works of Elathoor

Ramaswami Sasthri) आदि। ये सब ग्रंथ उन्होंने मुझसे संशोधित करवाए गए थे और मैंने आमुख तथा अनुशीलन भी लिखा था। श्री आर वै नारायण ने मुझे 'श्रीविद्या' नामक ग्रंथ (हिंदी) और ताँबे का 'श्रीचक्र' पुरस्कार में देकर मेरा आदर किया था।

जब से मैं तिरुवनंतपुरम आकर रहने लगा था तब से शास्तमंगलम और नेट्टयम के श्रीरामकृष्ण आश्रमों के साथ अपना सुदृढ़ संबंध स्थापित हो गया था। वहाँ के संतों के साथ अविकल एवं पवित्र स्नेह में बंधित हो गया था मैं। आध्यात्मिक विषयों पर मैं वहाँ भाषण देता था। मद्रास (चेन्नै) के श्रीरामकृष्ण आश्रम के साथ भी मेरा नाता था और वहाँ के प्रकाशित ग्रंथों में मेरे अनेक स्मृति-निबंध भी शामिल थे। श्री शारदा देवी का शिष्य श्री वीरेश्वरानंद स्वामी श्रीरामकृष्ण मिशन का अध्यक्ष था। 1971 अगस्त के सोलहवीं तारीख को नेट्टयम के आश्रम में रहकर उन्होंने मुझे 'मंत्रदीक्षा' दी थी। अनेक आश्रमों के दर्शन का सौभाग्य एवं पुण्य भी मुझे प्राप्त हुआ था। जैसे - कलकत्ता के बेलूर मठम्, दक्षिणेश्वर, कामारपुक्कूर, जयरामवाड़ी, श्री विवेकानंद स्वामी का जन्मगृह आदि भारत की उत्तुंग संस्कृति की इन संस्थाओं का दर्शन कर मैंने अपने को धन्य माना। श्रीरामकृष्ण आश्रम के प्रमुख मासिक प्रबुद्ध भारतम्, प्रबुद्ध केरलम, वेदांतकेसरी आदि में विविध आध्यात्मिक विषयों पर अपने बहुत से लेख प्रकाशित हो गए थे। श्रीरामकृष्ण तथा विवेकानंद से संबंधित साहित्य के प्रचार-प्रसार के लिए अपनी ज़िंदगी भर जो सेवा मैंने की थी उसके लिए ओट्टप्पालम के आश्रम में आमंत्रित कर श्री निर्मलानंद स्वामी ने मुझे पुरस्कार देकर आदृत किया था। मुझे एक लाख रुपए, श्लाघ्य-पत्र और एक बढ़िया दुशाला समर्पित कर अपना जो आदर किया गया था वह तो मेरे लिए अत्यंत बहुमूल्य एवं गर्व की बात थी। मैं इसे श्रीरामकृष्ण देव और श्री निर्मलानंद स्वामी का आशीर्वाद समझता हूँ।

तिरुवितांकूर देवस्वम बोर्ड के 'सन्निधानम्' नामक मासिक के संपादक के रूप में 1999 से दो वर्ष तक मैंने काम किया था। उस समय मैंने आधुनिक मलयालम भाषा के जनक के रूप में सुप्रसिद्ध महाकवि श्री एषुत्तच्छन द्वारा रचित 'आध्यात्मरामायणम किळिप्पाट्टु' नामक बृहद् ग्रंथ का संशोधन किया था। उसका एक गहन प्राक्कथन भी मैंने लिखा था और शोध पत्र को प्रमाणित कर प्रकाशित करने की सारी तैयारियाँ की थीं। लेकिन खेद की बात यह हुई थी कि वह मेरा संशोधित ग्रंथ किसी दूसरे के नाम पर प्रकाशित किया गया था। इसके फलस्वरूप 'सन्निधानम्' मासिक के संपादक का काम मैंने छोड दिया था। (क्रमशः)

उत्तर

1. मोहनलाल द्विज
2. नंददास
3. डॉ रामकुमार वर्मा
4. आचार्य शांतिप्रिय द्विवेदी
5. महात्मागाँधी
6. गिरिधर गोपाल
7. रस सिद्धांत
8. बाबा साहेब अंबेडकर
9. आचार्य रामचंद्र शुक्ल
10. शिवपूजन सहाय
11. डॉ दशरथ ओझा
12. नागार्जुन
13. सखी संप्रदाय
14. पृथ्वीराज रासो
15. प्रज्ञातिलक
16. रसलीन
17. भारतेंदु हरिश्चंद्र
18. मुद्राराक्षस
19. अमृतराय
20. सर्वेश्वर दयाल सक्सेना

प्रो.के.के.कृष्णन नंपूतिरि-विनम्र श्रद्धांजलि

डॉ श्रीलता विष्णु

कुछ व्यक्तित्व ऐसे होते हैं जो समय के साथ धुँधलाते नहीं, बल्कि स्मृति में और अधिक उज्ज्वल हो जाते हैं। साहित्य मनीषी और बहुभाषाविद् प्रो.के.के.कृष्णन नंपूतिरि, ऐसे ही एक विलक्षण व्यक्तित्व थे जिनकी मैं सुपुत्री हूँ। पिताजी को याद करना केवल अतीत की ओर लौटना नहीं है बल्कि वह एक ऐसी यात्रा है जहाँ ज्ञान, स्नेह और संस्कार की सुगंध आज भी बरकरार है।

वेद-मर्मज्ञ कुड़लमना श्री.वी.कृष्णन नंपूतिरी और श्रीमती सरस्वती अन्तर्जनम के सुयोग्य सुपुत्र के रूप में प्रो.के.के.कृष्णन नंपूतिरी का जन्म 7 जनवरी 1934ई को हुआ था। बचपन से ही उन्हें अपने पितृकुल से वेदाध्ययन और संस्कृत की समृद्ध परंपरा का सान्निध्य प्राप्त हुआ था। यह ज्ञान केवल पुस्तकीय नहीं, बल्कि सांसारिक अनुशासन और सांस्कृतिक जड़ों से जुड़ा हुआ था। संस्कृत में 'शास्त्री' उपाधि, हिंदी में 'राष्ट्रभाषा विशारद' जैसी विशिष्ट उपाधियाँ उन्होंने युवावस्था में ही अर्जित कर ली थीं। उनका विद्या के प्रति समर्पण और भाषाओं में सहज अधिकार उनके व्यक्तित्व की नींव थी जो बाद में उनके लेखन शिक्षण और सामाजिक चिंतन में स्पष्ट रूप से झलक उठे थे।

प्रो.के.के.कृष्णन नंपूतिरी ने केरल के विविध सरकारी महाविद्यालयों में चालीस वर्षों से ज़्यादा अध्यापन कार्य किया और लाखों विद्यार्थियों के जीवन को ज्ञान, अनुशासन और मूल्यबोध से आलोकित किया। अपनी दीर्घ और समर्पित सेवा-यात्रा के अंतिम चरण में उन्होंने तिरुवनन्तपुरम के प्रतिष्ठित यूनिवेर्सिटी कॉलेज से दस वर्षों तक हिंदी विभाग के अध्यक्ष के रूप में कार्य किया और 1989ई. में वे औपचारिक रूप से सेवानिवृत्त हुए, परंतु शिक्षण से उनका संबंध कभी नहीं टूटा। सेवा-निवृत्ति के पश्चात भी उन्होंने केरल विश्वविद्यालय, संस्कृत विश्वविद्यालय तथा इंदिरागाँधी राष्ट्रीय मुक्तविश्वविद्यालय (IGNOU) जैसे प्रमुख शैक्षिक संस्थानों में अध्यापन और मार्गदर्शन का कार्य जारी रखा। ज्ञान को बाँटना उनके लिए केवल पेशा नहीं, जीवन-धर्म था। साथ ही भारत सरकार के विविध मंत्रालयों के हिंदी सलाहकार समिति का सदस्य, केरल के कई विश्वविद्यालयों एवं महाविद्यालयों के भाषा-पठन फाकल्टी का सदस्य, पाठ्य पुस्तक परिषद का सदस्य, केरल हिंदी प्रचार सभा के मुख्य परीक्षक, हिंदी विद्यापीठ में हिंदी प्रचारक, एन.एस.एस.प्रोग्राम अफसर, योगक्षेम सभा का रक्षाधिकारी जैसे कई पद भी उनके द्वारा संभाला गया।

नंपूतिरी जी बहुभाषाविद थे - हिंदी, मलयालम, कन्नड़, संस्कृत और अंग्रेज़ी - इन पाँचों भाषाओं में उन्होंने गहरी पैठ बनाई और उल्लेखनीय साहित्य सृजन किया। उनकी हिंदी में प्रकाशित कृतियों में काव्यत्रयी (जिनमें उन्होंने तीन प्रमुख कवियों की रचनाओं का संपादन किया, जिससे छात्रों और पाठकों को कविता की गूढ़ताओं तक सहज पहुँच मिली।) श्रीनिवास रामानुजन (जो हिंदी में लिखित एक गणितज्ञ की जीवनी है जो इतनी उत्कृष्ट मानी गई कि इसे केन्द्रीय हिंदी निदेशालय द्वारा वर्ष 1993ई में अहिंदी क्षेत्र के लेखकों द्वारा रचित सर्वश्रेष्ठ ग्रंथ के रूप में राष्ट्रीय पुरस्कार से सम्मानित किया गया।) उनकी हिन्दी में प्रकाशित कृतियों में ,जयशंकर प्रसाद-साधना के विविध आयाम (कवि प्रसाद पर रचित ग्रंथ) गणित का जादूगर, रघुवंश की कथाएँ जैसे बालोपयोगी ग्रंथ आदि सम्मिलित हैं। बालोपयोगी ग्रंथ की विशेषता यह है कि उन्होंने इसमें अपने ही बच्चों को पात्र के रूप में गढ़ा जैसे साहित्य को पारिवारिक स्नेह से रंगाते हुए। यह तथ्य उनके लेखकीय मन की कोमलता और रचनात्मक आत्मीयता को उजागर करता है। उनके लिए लेखन केवल बौद्धिक अभ्यास नहीं आत्मा की अभिव्यक्ति थी। हिन्दी साहित्य के समग्र

योगदान के लिए हिन्दी विद्यापीठ (केरल) द्वारा पी. जी. वासुदेव पुरस्कार, केरल साहित्य अकादेमी का साहित्य पुरस्कार आदि से वे सम्मानित हुए हैं ।

उनका कार्य केवल हिंदी साहित्य तक सीमित नहीं रहा। अंग्रेज़ी-हिंदी-मलयालम कोश, बेसिक हिंदी, व्यावहारिक हिंदी व्याकरण जैसी कृतियाँ भाषा शिक्षण को सरल और प्रभावी बनाने की दिशा में मील के पत्थर हैं।

प्रो कृष्णन नंपूतिरी के लेखन में चिंतन, दर्शन और अध्यात्म की एक जीवंत धारा बहती थी। उनका विशिष्ट ग्रंथ 'श्रीशंकरन्टे चिंतापद्धति', मलयालम में शंकराचार्य के दार्शनिक चिंतन पर नई समीक्षात्मक दृष्टि प्रस्तुत करनेवाला दुर्लभ ग्रंथ है जिसे केरल साहित्य परिषद् द्वारा 'वेल्लालत्त पुरस्कार' से सम्मानित किया गया है। इस ग्रंथ से कई विद्वानों ने उद्धरण लिए हैं और यह अकादमिक संदर्भों में बार बार प्रयुक्त होता रहा है। उनकी बहुचर्चित अनुसन्धानात्मक कृति 'हिंदूधर्मस्वरूपम्' में हिंदू धर्म से संबन्धित विस्तृत आयाम प्रस्तुत है । इस कृति के द्वारा हिन्दू धर्म के प्रति लोगों के मन में व्याप्त भ्रम को दूर करने का प्रयास हुआ है। वेद, ब्राह्मण, आरण्यक, उपनिषद्, स्मृति, दर्शन, इतिहास आदि कई ग्रंथों में प्रस्तुत भारतीय संस्कृति को प्रस्फुटित करके लिखे गए प्रस्तुत ग्रंथ ,नोर्त अमेरिका के 'के एच.एन.ए.' संस्था द्वारा पुरस्कृत किया गया है। साथ ही कृष्णायन पुरस्कार, धर्मश्रेष्ठ सम्मान , विज्ञान कीर्ति पुरस्कार जैसे पुरस्कारों से भी प्रस्तुत ग्रंथ सम्मानित हुए हैं। 'अरिविंटेकाणाप्पुरंङ्ङल, भारतत्तिले मतङ्ङलुम दर्शनङ्ङलुम' आदि कृतियाँ सभी धर्मों के मूल तथ्य को समाज के सामने प्रस्तुत करने का महत्वपूर्ण प्रयास हैं। 'मरक्कप्पेटवरुम मरक्कप्पेटात्तवरुम' हिंदी से मलयालम में अनूदित कृति है। कुलशेखर आलवार की मुकुंदमाला एवं ईशावस्योपनिषद आदि की हिन्दी व्याख्या भी उनकी कलम से निकली थीं। मेरे पिताजी के गवेषण चातुर्य कैसे बहुस्वरता अर्जित कर रहे हैं, इन ग्रंथों से प्रमाणित हुआ है।

नंपूतिरी जी का जीवन केवल कृतियों में नहीं बल्कि विचारों कर्मों और संस्कारों में प्रस्फुटित है। वे ज्ञान और संस्कृति को पीढ़ी-दर-पीढ़ी सुरक्षित रखने के प्रति समर्पित थे। उनके भीतर एक सच्चा समाज सुधारक और गाँधीवादी विचारक निवास करता था। उन्होंने न केवल खादी को अपनाया बल्कि संपूर्ण जीवन में खादी के अतिरिक्त कोई वस्त्र नहीं पहना। वे केवल उपदेशक नहीं थे, बल्कि आचरण के द्वारा आदर्श प्रस्तुत करनेवाले व्यक्तिथे। विनोबा भावे के भूदान आंदोलन से प्रभावित होकर उन्होंने अपनी ज़मीन का दान भी किया था। उन्होंने जीवन भर न केवल शिक्षा दी, बल्कि विद्यार्थियों में समानता, स्वावलंबन और नैतिकता के बीज बोए।

"न तस्यप्रतिमा अस्ति यस्म नाम महदयशः"- यह पंक्ति पिताजी के विषय में सौ फीसदी सत्य है।

हम तीनों बच्चों के लिए वे न केवल पिता थे, बल्कि एक आदर्श थे - संयम, साधना और मूल्यबोध के जीते जागते उदाहरण। उन्होंने कभी भी अपनी भावनाएँ शब्दों में व्यक्त नहीं कीं, लेकिन उनके कार्यव्यापार , त्याग और उनकी जीवन-शैली ने हमें गहरे तक प्रभावित किया। उनके शताभिषेक एवं नवति जैसे जन्मदिन को धूमधाम से मनाने का सौभाग्य हमें प्राप्त हुआ। ये पीढ़ियों के बीच का वह भावनात्मक पुल था जो केवल एक सच्चे परिवार-नायक ही बना सकते हैं। उनकी बेटी के रूप में जन्मे, यही मेरे जीवन का सबसे बड़ा सौभाग्य है।

"हिंदी साहित्य के प्रहरी, वेद-मर्म के ज्ञानी/शब्दों में जीवन बुनते, रहे यश की कहानी।"

बीस फरवरी 2025 ई को जब उन्होंने अंतिम सांस ली, तो वह केवल एक जीवन का अंत नहीं था   एक युग का अवसान था। सामाजिक, शैक्षिक और सांस्कृतिक चेतना के क्षेत्र में एक दैदीप्यमान व्यक्तित्व - प्रो.के.के.कृष्णन नंपूतिरी- हमारे बीच नहीं हैं, लेकिन उनके विचार उनका स्नेह हमारे संस्कार में हमेशा जीवित रहेंगे।

पूर्व विभागाध्यक्ष, हिंदी विभाग
श्री शंकराचार्य संस्कृत विश्वविद्यालय

सुगम हिन्दी परीक्षा पुरस्कार वितरण, विविध ज़िलाओं में।

RNI No. 7942/1966
Date of Publication :15-09-2025
Date of posting : 20th of Every month

KERAL JYOTI

SEPTEMBER 2025

Vol. No. 62, Issue No.06
Regn. No. KL/TV(S) 381/2025-2027
Price Rs. 40/-

A monthly Publication of Kerala Hindi Prachar Sabha approved for School Libraries by the Education Dept., Govt. of Kerala as per notification No. B-3 / 4036/83 SIE dated 20-9-1985
Approved by University of Kerala as per order No. Ac. A II / 1 / 31965 / Std. Journals/2013 / dtd : 27-6-2013

केरल हिन्दी प्रचार सभा में कर्मचारियों व अध्यापकों द्वारा आयोजित ओणम त्योहार में केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय का उपनिदेशक श्री अनिलकुमार संदेश दे रहे हैं।

केरल हिंदी प्रचार सभा, तिरुवनंतपुरम-695014 के लिए मंत्री अ.व.डॉ.मधु बी द्वारा प्रकाशित, राष्ट्रवाणी मुद्रणालय केरल हिंदी प्रचार सभा, तिरुवनंतपुरम-695014 में मुद्रित प्रो.डी.तंकप्पन नायर, डॉ.एम.एस.विनयचन्द्रन व डॉ.रंजीत रविशैलम द्वारा संपादित

Published by the Secretary, Adv. Dr. B. Madhu for Kerala Hindi Prachar Sabha, Tvpm-695014
Printed at Rashtravani Mudranalaya, Kerala Hindi Prachar Sabha, Tvpm-695014 & edited by Prof.D.Thankappan Nair, Dr.M.S.Vinayachandran and Dr.Renjith Ravisailam